BIHAR YOGA

तत्त्व शुद्धि

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

तत्त्व शुद्धि

तत्त्व शुद्धि

आन्तरिक शुद्धिकरण का तांत्रिक अभ्यास

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

मार्गनिर्देशन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

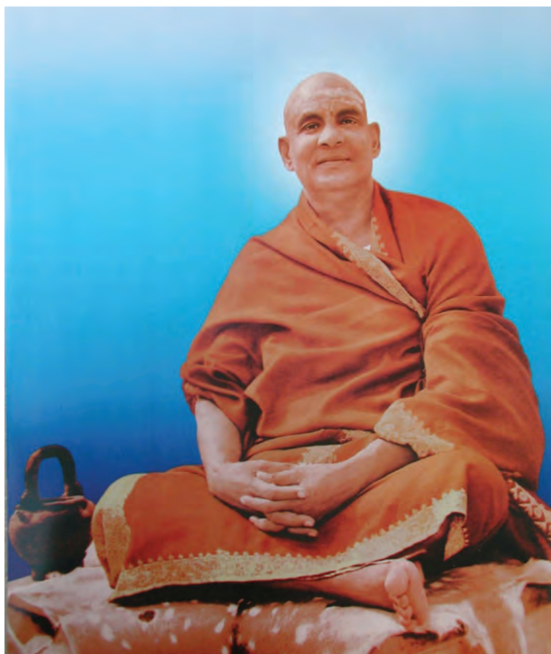
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2019

ISBN: 978-93-81620-72-4

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली 110001

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net

इस पुस्तक का उद्देश्य योगाभ्यासों की प्रासंगिक जानकारी उपलब्ध कराना है; यह अभ्यास-पुस्तक नहीं है और इसका प्रयोग स्वयं या दूसरों को सिखाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। योग का प्रशिक्षण कुशल मार्गदर्शन में लिया जाना चाहिए, जिसने इन अभ्यासों में दक्षता प्राप्त कर ली हो। शिक्षक और शिक्षण विधि के चयन का दायित्व अभ्यासी का है। बिहार योग विद्यालय किसी प्रकार अभ्यासी के चयन के लिए उत्तरदायी नहीं है।



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय-सूची

शक्ति को नमन

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

परिचय

आज योग का अभ्यास विश्व के लगभग हर कोने में हो रहा है, लेकिन मानव चेतना में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। तब त्रुटि कहाँ है? क्या अभ्यास दोषपूर्ण है? सम्भवतः नहीं, क्योंकि हम ऐसे असंख्य दृष्टान्त प्रस्तुत कर सकते हैं जिनमें यह सफल रहा है। अधिक सम्भावना इस बात की है कि हमारी साधना के ढंग में त्रुटि हो; क्योंकि जब हम कुछ अभ्यास करना चाहते हैं तो कुछ यहाँ से ले लेते हैं, कुछ वहाँ से। योग के प्रति ऐसे असंगत दृष्टिकोण को समाप्त करने के लिए हमें तंत्र के दर्शन और अभ्यासों पर अधिक ध्यान देना होगा, जहाँ से योग का उद्गम हुआ है।

तंत्र जैसे व्यापक विषय को, जिसने अस्तित्व को हर सम्भव दृष्टिकोण एवं विचारधारा से देखा-परखा है, उड़ती नज़र से देखना पर्याप्त नहीं है। सृष्टि के स्वरूप, इसके प्रकटीकरण और व्यक्ति के संदर्भ में इसके कार्य-कारण के गहन अध्ययन के द्वारा तांत्रिकों ने लुप्त कड़ी को ढूँढ निकाला है जो व्यक्ति और ब्रह्माण्ड को जोड़ती है।

तांत्रिकों को जब उस अन्तराल को समाप्त करने की युक्ति प्राप्त हो गयी तब उन्होंने दूसरों के मार्गदर्शन के लिए विधियों एवं अभ्यासों की रचना की। यद्यपि इन विधियों की प्राचीनता कल्पनातीत है, फिर भी वे काल की कसौटी पर खरी उतरी हैं। जिस आधार पर उनका विकास हुआ था उसमें व्यक्ति के क्रमिक विकास के लिए आन्तरिक अनुभूतियों की आवश्यकता पर बल दिया गया है; यह केवल सीमाबद्ध ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन्त अनुभूति है।

तंत्र की ये विधियाँ अत्यन्त व्यवस्थित एवं सुस्पष्ट हैं। अभ्यास इस प्रकार श्रृंखलाबद्ध हैं कि समाधि का लक्ष्य सुदूर भविष्य की संभावना प्रतीत नहीं

होता, बल्कि यदि आप ठान लें तो उसे अभी प्राप्त कर सकते हैं। समाधि के लिए अदम्य इच्छा का होना अनिवार्य है, क्योंकि बिना उत्कट अभिलाषा के आप वहाँ तक नहीं पहुँच सकते हैं। यह इच्छा आपको पूर्णत: अभिभूत तथा तन्मय करने वाली होनी चाहिए ताकि किसी अन्य विचार का अस्तित्व ही न रहे और वह आपके मन की संकेन्द्रित ऊर्जा का अपव्यय न करे। तंत्र के अनुसार समाधि को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब आप बाहर की अपेक्षा अपने अन्दर देखने का प्रयास करें। अपने अन्दर देखने की कला का विकास करने के लिए आपको उन अभ्यासों को करना है जिनकी रचना तंत्र द्वारा विशेष रूप से इस उद्देश्य से की गयी है।

इस प्रकार तंत्र दर्शन को समझने की अपेक्षा अभ्यास पर अधिक बल देता है। अनेक सिद्ध तांत्रिक तो तंत्र के उन महान् दर्शनों से अवगत भी नहीं हैं जिनकी प्रशंसा में अनेक अनुवाद या भाष्य किये जा चुके हैं, क्योंकि वे केवल उन सिद्धान्तों से नहीं, बल्कि चेतना के रूपान्तरण से अभिभूत या प्रभावित हैं जो अनुभूति के प्रत्येक स्तर के उद्भासित होने पर हुआ है। इसलिए तंत्र को समझने के लिए आपको उसके अभ्यासों में गहराई से उतरना होगा, केवल ऊपरी तौर पर टुकड़ों में प्राप्त हुई जानकारी के आधार पर उसे समझने का प्रयास नहीं करना है। पहले आप स्वयं तंत्र को परखें और तब उसका मूल्यांकन करें।

ऐसा करने के लिए आपको तंत्र द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं का आरम्भ से अन्त तक अनुपालन करना होगा। बिना तैरना जाने नदी में छलांग लगाने से कोई लाभ नहीं होता। उसी प्रकार यह परामर्श दिया जाता है कि साधना का चयन व्यक्तिगत इच्छाओं के आधार पर नहीं, बल्कि व्यक्तिगत प्रगति और क्रमिक विकास के आधार पर होना चाहिए ताकि दिग्भ्रमित होने की आशंका न रहे।

उदाहरण के लिए, वाम मार्ग, कुण्डलिनी योग तथा ऐसे अनेक मार्ग आपको आकृष्ट करते और आवेश भरते हैं, लेकिन जब तक ठोस आधार नहीं होता तब तक साधना व्यर्थ ही जाती है। तंत्र में सभी साधनाओं हेतु नींव डालने को शुद्धि कहा जाता है।

हालाँकि इस बिन्दु पर तंत्र का अन्य दर्शनों से मतभेद रहा है, अन्य दर्शन जिसे पाप मानते हैं उसे तंत्र विकास के लिए एक आवश्यक अनुभव मानता है। तंत्र कहता है कि वासना, क्रोध, ईर्ष्या, अपराबोध, लज्जा और घृणा जैसे

मनोभावों को इनके विपरीत भावों के साथ जोड़ कर इनकी शक्ति का उपयोग करो, तभी आप एकात्मकता का अनुभव कर पाओगे। यदि आप इन शक्तियों को इनकी विपरीत शक्तियों से पृथक् कर इनका अनुचित उपयोग करते हैं तो इनके बीच का अन्तराल बढ़ता जायेगा और ऐक्य असंभव हो जायेगा। इसलिए तंत्र शुद्धिकरण की बात करता है, लेकिन दूसरे अर्थ में। शुद्धिकरण से इसका अभिप्राय है पदार्थ से ऊर्जा को विमुक्त करना ताकि ऊर्जा का चेतना के साथ लय हो सके।

शुद्धि के इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए तंत्र में शुद्धिकरण की अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनसे स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण, सभी स्तरों तक शुद्धि होती है। तत्त्व शुद्धि इन सभी अभ्यासों में एक अनूठा एवं श्रेष्ठ अभ्यास है, क्योंकि इससे स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण सभी स्तरों पर प्रभावी रूप से शुद्धि होती है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधना के रूप में उभर कर आया है, जिसका अनुभव साधक को बाह्य से अन्तर्जगत् की यात्रा के क्रम में करना होता है।

तत्त्व शुद्धि की इस प्रक्रिया से गुजरे बिना तंत्र की उच्च अंतरंग साधनाएँ अंधकार व निराशा की ओर ले जाती हैं। यह समझने योग्य अति साधारण बात है। वाम मार्ग, कौल मार्ग, श्मशान साधना, श्यामा साधना या कुण्डलिनी योग में गहन एकाग्रता की आवश्यकता होती है, जो तभी प्राप्त होती है जब मन भौतिक अनुभवों से परे चला जाता है और विशुद्ध ऊर्जा की सूक्ष्म आवृत्ति के साथ स्पन्दित होने लगता है। आपको इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए इतना निपुण होना चाहिए कि एक बटन दबाते ही यह सहज प्राप्त हो जाए। केवल तभी आप अभ्यास के परिणामस्वरूप होने वाले आन्तरिक विस्फोटों को नियंत्रित कर पाने की आशा रख सकते हैं। अन्यथा आप केवल भौतिक सजगता के स्तर पर ही रह जायेंगे, या स्थूल मन के द्वारा कार्य करते हुए यदि आप भौतिक अनुभवों के पार चले भी गये तो परिणामी अनुभूतियाँ व्यक्तित्व में भयंकर दोष उत्पन्न कर सकती हैं।

साधना की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि एक सामंजस्यपूर्ण समाज में एक साथ रहने के लिए भी यह शुद्धिकरण आवश्यक है। 'संसार की चिंता' मानव मन पर आक्रमण करती रहती है और मनुष्य इन आघातों का सामना नहीं कर पाता है। मन की क्रियाओं को समझ पाने में असमर्थ होने के कारण आज मनुष्य मानसिक तनाव की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है।

यदि आप एक सामान्य व्यक्ति से पूछें, 'मन क्या है?', वह कहेगा कि मन विचार है। वह सोच ही नहीं सकता कि मनोवैज्ञानिक स्वरूप के अतिरिक्त मन कुछ और भी हो सकता है। उसे यह मालूम नहीं कि हम अपने अन्दर जितनी अधिक गहराइयों में जाते हैं, उतना अधिक उन छुपी हुई क्षमताओं को उद्घाटित करते हैं जिनमें सृजन और विनाश की शक्ति होती है। क्या आप विश्वास कर सकते हैं कि आपके जीवन को अनगिनत द्वन्द्वों से भर देने वाला मन एक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना भी कर सकता है; आपका अहंकार जो आसक्ति की पीड़ा और दु:खों का कारण है, अभिन्नता और एकता की अनुभूति भी दिला सकता है।

आपके अन्दर सुषुप्त है जीवन का वह रहस्य, जो एकता से विविधता की यात्रा कराता है; आपके अन्दर एक ऐसे उच्च मन का अस्तित्व है जो उस निरंजन चेतना का प्रतिबिम्ब है। तत्त्व शुद्धि की साधना मन की आन्तरिक शक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह स्वयं को एक सक्षम सेतु के रूप में प्रस्तुत कर सके जिसके माध्यम से एक साधक वस्तुपरक अनुभव की क्षणभंगुरता को पार कर आन्तरिक वास्तविकता के स्थायित्व में प्रवेश कर पाये।

तत्त्व शुद्धि निश्चित रूप से एक ऐसी पद्धति है जिसकी रचना मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व के शुद्धिकरण के लिए की गयी है। यह शुद्धिकरण स्थूल स्तर से प्रारम्भ होता है और सूक्ष्म तथा आत्मिक स्तर तक जाता है, इसकी परिणति सूक्ष्म सजगता में होती है, जो साधक को उस ऊर्जा एवं चेतना की अनुभूति के लिए तैयार करती है जहाँ से उसका उद्भव हुआ है। जब कोई व्यक्ति लम्बे समय तक योग का अभ्यास करता है तब उसके अन्दर एक क्षीण शक्ति जाग्रत होती है, जिसका अनुभव शरीर तथा मन के आत्मिक स्तरों पर किया जा सकता है। तत्त्व शुद्धि शक्ति के इस जागरण को एक स्वरूप प्रदान कर केन्द्रित करती है और इस प्रकार सजगता में एक परिवर्तन आता है।

तत्त्व शुद्धि न केवल मानसिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास के अभ्यासों के संदर्भ में प्रमुख भूमिका निभाती है, बल्कि उन अभ्यासों में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिनका सम्बन्ध उपचारात्मक एवं आरोग्यकर प्रक्रियाओं से होता है। यदि तत्त्व शुद्धि का अभ्यास हठ योग और योगोपचार के अभ्यासों के पूर्व किया जाये तो परिणाम शीघ्रता के साथ प्राप्त होंगे और

अधिक स्थायी होंगे। हठ योग के अभ्यासियों को यह समझना चाहिए कि जिस शरीर को वे माध्यम बना रहे हैं, वह पंच तत्त्वों से बना हुआ है, इसलिए षट्कर्मों के परिणामों पर तत्त्व शुद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। षट्कर्म भी शरीर के शुद्धिकरण की प्रक्रियायें हैं, लेकिन इनका प्रभाव शरीर के त्रिदोषों तक ही सीमित रहता है। ये अन्तर्तम सूक्ष्म स्तरों को प्रभावित नहीं कर पाती हैं, किन्तु तत्त्व शुद्धि के द्वारा यह शुद्धिकरण सम्भव है।

तत्त्व शुद्धि सभी साधनाओं का आधार है, क्योंकि यह तैयारी के मुख्य कार्यों को करता है। जिस प्रकार कृषक खेत जोतता है, उनमें समुचित खाद डालता है और उसके बाद बीज डालता है, ठीक उसी प्रकार एक साधक तत्त्व शुद्धि के द्वारा पहले अपने शरीर और मन को तैयार करता है और उसके बाद अपनी आन्तरिक अनुभूतियों की विपुलता में वृद्धि करता है।

1

तंत्र

तंत्र का उद्देश्य इस सारगर्भित शब्द में ही पारिभाषित है। तंत्र की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों से हुई है–तनोति अर्थात् तानना या विस्तार करना और त्रायति अर्थात् स्वतंत्र या मुक्त करना। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तंत्र मन का विस्तार और अन्तर्निहित प्रसुप्त ऊर्जा को मुक्त करने की विधि है। तंत्र को समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि वास्तव में मन के विस्तार और ऊर्जा के मुक्त होने का क्या अभिप्राय है।

आन्तरिक और बाह्य जगत् से सम्बद्ध हमारी अनुभूतियों की सीमा अत्यन्त सीमित होती है। हम अपनी कर्मेन्द्रियों के माध्यम से केवल देख, सुन, सूँघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं या स्वाद पा सकते हैं। यदि हमारी कोई इन्द्रिय काम करना बन्द कर दे तो उस इन्द्रिय से सम्बद्ध अनुभव तथा ज्ञान सीमित और बाधित हो जाते हैं। इसलिए अवबोधन और ज्ञान निर्दयतापूर्वक पूर्णतः इन्द्रियों पर निर्भर करते हैं। यह हमारे जीवन को सीमित करने वाला पक्ष है, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान समय, स्थान और वस्तु की सीमाओं में बँधा हुआ होता है।

काल, स्थान और वस्तु वैचारिक रूप में मानव मन में स्थित होते हैं। यदि मनुष्य का मन नहीं हो तो काल या स्थान या वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता और इसके विपरीत यदि ये तीनों नहीं हों तो मानव मन का भी कोई अस्तित्व नहीं बचता है। मन के ये तीन वैचारिक रूप सीमाबद्ध हैं और इन्हें असीमित या अक्षय ज्ञान का स्रोत नहीं माना जा सकता। जब तक हम इन्द्रियों और मन के माध्यम से कार्य करते रहेंगे तब तक इन परिमित और अवरोधक सीमाओं को पार नहीं कर पायेंगे।

उदाहरण के लिए, एक पुष्प के द्युतिमान सौंदर्य को देखने के लिए यह आवश्यक है कि पुष्प आपकी खुली आँखों के सामने हो; चन्दन या चमेली की सुगंध लेने के लिए यह आवश्यक है कि वे नाक के आस-पास हों; चॉकलेट की मिठास या मिर्च की तिक्तता का स्वाद पाने के लिए उन्हें खाना पड़ेगा। इस प्रकार के अनुभव को वस्तुपरक कहते हैं, क्योंकि ये वस्तु की उपस्थिति, इन्द्रियों और इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में मन पर निर्भर रहते हैं।

अनुभूतियों की अनेक श्रेणियाँ हैं जिनमें आप बन्द आँखों से देख सकते हैं, भोजन के नहीं होने पर भी उसका स्वाद पा सकते हैं, बिना वाद्य यंत्र की ध्वनि के संगीत को सुन सकते हैं। यह पूर्णत: व्यक्तिपरक अनुभूति है और मन के सीमित विचारों से पूरी तरह स्वतंत्र है। व्यक्तिपरक अनुभूति के द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान वस्तुपरक अनुभूति की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थ तथा सुस्पष्ट होता है, क्योंकि यह मन के विस्तार का परिणाम होता है।

मन का विस्तार वह घटना है जिसके फलस्वरूप मनुष्य इन्द्रियों, काल, स्थान और वस्तु के क्षेत्र के परे जाकर अनुभव प्राप्त कर सकता है। आप अतीत या भविष्य में जा सकते हैं और उन स्थानों पर हो रही घटनाओं के विषय में जान सकते हैं जहाँ आप सशरीर उपस्थित नहीं हैं। इसे मन का विस्तार कहा जाता है, लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं होता जब तक आप इन्द्रियगत अनुभवों से बँधे हुए हैं। इन्द्रियों तथा अहंकार से संचालित होने वाला मन सभी अनुभवों को राग एवं द्वेष के, जिनका उसने पोषण किया है, आधार पर श्रेणीबद्ध कर देता है। मन के द्वारा किया जाने वाला यह आरोपण किसी भी अनुभव से प्राप्त हुए ज्ञान को विकृत कर देता है और शुद्ध, परिष्कृत ज्ञान को विकसित होने का अवसर नहीं देता है।

विस्तृत मन के द्वारा प्राप्त ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है और अन्तत: अन्तर्ज्ञात ज्ञान के रूप में चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है जिसे शाश्वत, पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान कहा गया है। लेकिन मन का विस्तार एक रात में नहीं हो जाता है। साधक अनेक प्रकार के अनुभवों से होता हुआ आगे बढ़ता है, उनमें कुछ मध्यम, कुछ तीव्र, कुछ प्रिय और कुछ अप्रिय भी होते हैं। यह एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है जिसकी परिणति ब्रह्म ज्ञान में होती है।

बच्चा एक रात में वयस्क नहीं बन जाता है। रूपान्तरण क्रमश: होता है। बचपन और वयस्कता के बीच की सीमा रेखा इतनी सूक्ष्म है कि यह नहीं बताया जा सकता है कि एक कहाँ समाप्त हुआ और दूसरा कहाँ आरम्भ हुआ।

इसी प्रकार मानव चेतना निरन्तर विकसित होती रहती है। मन अपना विस्तार करता हुआ नयी सीमाओं को लाँघता जाता है। रूपान्तरण हो रहा है, किन्तु उसकी गति क्रमिक है और परिवर्तन सूक्ष्म।

मन के विकास को गति प्रदान करने और अपने रूपान्तरण को निदेशित करने के लिए आपको तंत्र एवं योग के अभ्यास को अपनाना होगा। इन अभ्यासों की रचना ऊर्जा को पदार्थ से मुक्त करने की क्रिया को तीव्र बनाने और विशुद्ध सहज चेतना को, जो सभी प्रकार के ज्ञान की स्रोत है, प्रकट करने के लिए की गयी है।

तंत्र का उद्देश्य

दैनिक जीवन में हम अवबोधन एवं ज्ञान के लिए जिस मन का उपयोग करते हैं वह इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है। किन्तु यदि हम अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर दें और मन को अन्दर की ओर मोड़ दें तो यह स्वयं को आन्तरिक अनुभव तथा विस्तृत मन के द्वारा प्रकट करता है। इस प्रकार पदार्थ ऊर्जा से अलग हो जाता है, जिसके फलस्वरूप शक्ति स्वतन्त्र हो जाती है और उसके बाद शिव अर्थात् चेतना के साथ संयुक्त होकर समरूप सजगता उत्पन्न करती है।

जिस प्रकार सागर की ओर नदी का प्रसार उसकी सीमाओं और बाधाओं को समाप्त कर देता है, उसी प्रकार सीमित मन विस्तीर्ण होकर ब्रह्माण्डीय या अनन्त मन में समा जाता है और इस प्रकार सत्य को ग्रहण करने तथा उसे संप्रेषित करने वाला बन जाता है। परिणामस्वरूप ऊर्जा का विस्फोट होता है और अन्तर्निष्ठ चेतना पदार्थ से विमुक्त हो जाती है। इसकी तुलना कुण्डलिनी के अनुभव से की जा सकती है और सदा से तंत्र का यही उद्देश्य रहा है।

अन्य दर्शनों का भी यही लक्ष्य था, हालाँकि उनके मार्ग भिन्न थे। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म या अविभाज्य, एकरूप, सर्वव्यापी सत्य या चेतना की अवधारणा है। ब्रह्म शब्द की उत्पत्ति बृहन् धातु से हुई है जिसका अर्थ है विस्तार होना, इसलिए इसे विस्तरणशील चेतना के रूप में समझा जा सकता है। उच्चतम ज्ञान के लिए इस ब्रह्म सजगता का महत्त्व है जो हममें से प्रत्येक में विद्यमान है। यह अद्वैत के रूप में स्थित है जिसमें विलीन होने के लिए हम निरन्तर प्रयासरत हैं।

तंत्र में इस अवधारणा को शिव या परम चेतना के रूप में प्रतिपादित किया गया है जो हम सभी के भीतर मूक साक्षी के रूप में स्थित हैं। वेदान्त के ब्रह्म हों या सांख्य दर्शन के पुरुष या तंत्र के शिव, मूल रूप से यह है एक ही अवधारणा। हालाँकि तंत्र और अधिकतर अन्य दर्शनों में यह अंतर है कि वे साधक के जीवन पर अनेक प्रकार के निषेध लगा देते हैं और नियमों के कठोरतापूर्वक पालन की अपेक्षा करते हैं, जबकि तंत्र प्रत्येक व्यक्ति को विकास की छूट देता है, भले ही वह विकास के किसी भी चरण में हो। तंत्र का कहना है कि आप भोगवादी हों या अध्यात्मवादी, आस्तिक हों या नास्तिक, बलशाली हों या दुर्बल, धनाढ्य हों या दरिद्र–आपके लिए एक मार्ग है जिसे आपको ढूँढना है।

यही तंत्र का उद्‌देश्य है; गुह्य वासना या काला जादू या सिद्धियों की प्राप्ति या स्वेच्छाचारी जीवन नहीं। ये कभी तंत्र के उद्‌देश्य नहीं रहे हैं। तंत्र की इस ढंग से विकृत व्याख्या की गयी होगी, लेकिन वह विवेचना का बिल्कुल भिन्न विषय है। इसके अतिरिक्त, हम तंत्र के यथार्थ विश्लेषण के लिए उन पर विश्वास नहीं कर सकते जो समरूप सजगता प्राप्त करने में विफल हो चुके हैं।

तंत्र–मन को मुक्त करने का एक उदार मार्ग

समय-समय पर तांत्रिक इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न विधियों एवं मार्गों पर प्रयोग करते रहे हैं। उनका मानना था कि सभी व्यक्ति एक ही मार्ग पर नहीं चल सकते, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति क्रमिक विकास के भिन्न स्तर पर है। प्राय: ऐसा कहा जाता है,‘एक व्यक्ति का भोजन दूसरे व्यक्ति के लिए विष हो सकता है।’ तांत्रिकों ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मार्ग को सम्मिलित करने की आवश्यकता को समझा था, चाहे व्यक्ति घोर विषयासक्त हो, गम्भीर दार्शनिक हो या साधनारत योगी।

वे प्राय: ऐसी विधियों के साथ प्रयोग करते थे जो सामान्य दृष्टि से अत्यन्त अश्लील और कामुक प्रतीत होती थीं। इन अभ्यासों को वीभत्स माना जाता था, क्योंकि इनमें एक नग्न स्त्री या एक शव के निकट बैठकर ध्यान करना और इसी प्रकार के अन्य उत्तेजित करने वाले अभ्यास सम्मिलित होते थे। इन्हीं कारणों से अनेक लोगों ने तंत्र का विरोध किया, इसकी आलोचना की और कहा कि यह भोग-वासना का एक बहाना है तथा इसमें किसी प्रकार

आध्यात्मिक अनुभव नहीं होता है। किन्तु तांत्रिकों की लगनशीलता और दृढ़ता ने कुछ और ही प्रमाणित किया। यदि वह असंयत वासना, मदिरा और मादक पदार्थों के साथ प्रयोग करता है तो उसकी परख इन क्रियाओं के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी मानसिक सजगता, दृष्टिकोण और उसके उद्देश्य के आधार पर की जानी चाहिए। यदि वह प्रेतात्माओं का आवाहन करता है और ऐसे अनुष्ठान करता है जिसे सामान्य रूप से 'काला जादू' कहा जाता है, तो भी ऐसे कृत्यों के आधार पर उसकी आलोचना न करते हुए, उसके इन कृत्यों के उद्देश्य के आधार पर उसे परखना चाहिए।

एक तांत्रिक और साधारण कामुक व्यक्ति के अभ्यास में यही महत्त्वपूर्ण अन्तर है। कामुक व्यक्ति केवल कामेच्छाओं की पूर्ति और भौतिक उपलब्धि के लिए इन अभ्यासों को करता है। तांत्रिक इन अभ्यासों द्वारा क्रमिक ढंग से अपने अन्दर प्रसुप्त शक्तियों का विस्फोट करता है। आवेग, भय, घृणा, प्रेम, क्रोध इत्यादि वे शक्तियाँ हैं जिनका वह सामना करता है। यदि इन शक्तियों को समुचित ढंग से नियन्त्रित कर लिया जाये तो अनेक प्रकार की उच्च अनुभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। ध्यान के दौरान यदि एकाग्रता कायम रखना सम्भव हो तो वे दृश्यों, स्वप्नों, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों, स्पष्ट आवाजों, विभिन्न प्रकार के संगीत और यहाँ तक कि वस्तुओं, पशुओं और मनुष्यों के रूप में भी मूर्त हो उठते हैं।

तांत्रिक का कौशल इसमें है कि वह निर्भीक और दृढ़ बना रहे। वह अनुभवों से अभिभूत नहीं हो, न ही भय के वशीभूत हो। यदि दुर्बल मानसिकता, असन्तुलित भावनाओं और विचलित मन वाला व्यक्ति इस प्रकार के अभ्यास करता है तो उसके मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, वह घोर विषाद में डूब सकता है, यहाँ तक कि पागल भी हो सकता है।

भय और आवेग क्या हैं? ये केवल ऊर्जा की शक्तियाँ हैं। दैनिक जीवन में होने वाले भावनात्मक अनुभव किसी व्यक्ति को पागल कर देने के लिए पर्याप्त हैं। यदि सन्तुलन कायम नहीं रखा जा सका तो व्यक्ति हत्या, बलात्कार और अन्य अपराध जैसे पागलपन वाले कृत्य कर बैठता है। यदि आपके मन को आपके अन्दर छुपे गहरे भय और आवेगों के भयंकर आघात का सामना करना पड़े तो क्या होगा? क्या आप उसे सम्भाल पायेंगे? एक तांत्रिक अपने अचेतन से अनुभवों का विस्फोट करने में सक्षम होता है; वह इन आन्तरिक शक्तियों को नियंत्रित कर महत्तर एवं

सूक्ष्म शक्तियों में रूपान्तरित करने में निपुण होता है जिन्हें वह अपनी इच्छा से निर्दिष्ट कर सकता है।

हालाँकि यह पाया गया कि इन अभ्यासों में से अनेक के परिणामस्वरूप मन के अज्ञात आयामों से अद्भुत अनुभव प्राप्त हुए, जिनका सामना करने में एक औसत व्यक्ति सक्षम नहीं था। इसलिए तांत्रिकों ने ऐसे अभ्यासों का विकास किया जिसके द्वारा साधक सहजतापूर्वक अपनी क्षमता के अनुसार धीरे-धीरे क्रमिक अनुभव प्राप्त कर सके। उग्र अभ्यासों को उनके लिए छोड़ दिया गया जो शक्तिशाली आन्तरिक अनुभवों का साहस और धैर्य के साथ सामना कर सकें। सरल विधियाँ जो उन्नत अभ्यासों के लिए आधार तैयार करती हैं, उनमें हठ योग, क्रिया योग और जप के अतिरिक्त तत्त्व शुद्धि सम्मिलित हैं।

तांत्रिक साहित्य

तांत्रिक साहित्य में इनकी तथा अन्य अभ्यासों की स्पष्ट रूप से व्याख्या की गयी है। यद्यपि, तांत्रिक साहित्य अत्यन्त विषद और अधिकतर लोगों के लिए प्राय: अबोधगम्य है क्योंकि यह प्रतीकों, रूपकों, पौराणिक कथाओं तथा दृष्टान्तों के रूप में लिखित है। इसका विशेष कारण है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी सहज वृत्तियों पर विजय प्राप्त नहीं की है उसके हाथों में तंत्र उसी प्रकार है जैसे किसी बच्चे के हाथों में बारूद का गोला हो।

तांत्रिक साधना के परिणामस्वरूप कम समय में ही सिद्धि या आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। लेकिन चेतना के विकास में इन सिद्धियों का कम ही महत्त्व होता है। बल्कि प्राय: ये बाधा बन जाती हैं, क्योंकि अनेक साधक इनसे प्राप्त होने वाले लाभों में हमेशा के लिए उलझकर रह जाते हैं। इसलिए तंत्र में इस ज्ञान को अत्यन्त चतुराई से इस प्रकार दुर्बोध बनाकर रखा गया है कि केवल सच्चा साधक ही इसके प्रतीकशास्त्र को समझ पाये।

कुल मिलाकर चौंसठ तंत्र हैं, अर्थात् वे सभी विज्ञान के विविध पक्षों से सम्बद्ध हैं, जैसे अपने और दूसरे व्यक्ति के मन को किस प्रकार नियन्त्रित किया जाये, अमरता किस प्रकार प्राप्त की जाये, पुंसत्व एवं मैथुन कौशल किस प्रकार प्राप्त किया जाये, इत्यादि। सुविख्यात भाष्यकार भास्कराया ने आठ और शास्त्रों को इनमें सम्मिलित किया है जिससे तंत्रों की कुल संख्या बहत्तर हो गयी है। तंत्र विज्ञान में इतनी विविधता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए एक मार्ग उपलब्ध हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति बिल्कुल

आध्यात्मिक नहीं हो, तो भी उसे अपनी चेतना का विस्तार करने के लिए एक मार्ग मिल जायेगा।

तंत्र शास्त्रों के अतिरिक्त पुराणों का भी सम्बन्ध तंत्र विज्ञान से है। पुराण अधिकतर दृष्टान्त रूप में हैं और अनेक तांत्रिक अभ्यासों को रूपक-कथाओं का छद्म रूप दे दिया गया है। वे देवों और राक्षसों की जीवनगाथा का गुणगान करती हैं और उन रंगबिरंगी कथाओं के माध्यम से हम तंत्र के मार्ग की ओर बढ़ जाते हैं। श्रीमत् देवी भागवतम् एवं महानिर्वाण तंत्र में तत्त्व शुद्धि के अभ्यासों का रहस्योद्घाटन किया गया है।

शक्ति की उपासना

तंत्र के विद्यार्थियों को प्रारम्भ में ही एक बात समझ लेनी होगी–यद्यपि तंत्र विज्ञान एक सर्वव्यापी अद्वैत सत्ता को स्वीकार करता है, किन्तु यह शिव (चेतना) एवं शक्ति (ऊर्जा) के द्वैत तत्त्व की उपस्थिति के प्रति श्रद्धा और विश्वास भी व्यक्त करता है। शिव निष्क्रिय तत्त्व है जो निष्कलुष विशुद्ध चेतना के रूप में स्थित होता है, किन्तु शक्ति जो गतिमान तत्त्व है, उसकी प्रेरणा से निश्चल रहने वाला शिव तत्त्व क्रियाशील हो जाता है।

शिव का ताण्डव नृत्य इसका प्रतीक है और इस नृत्य के कारण शिव को 'नटराज' कहा जाता है। शिव के प्रत्येक पक्ष के अनुरूप शक्ति का एक पक्ष है। यदि शिव शम्भु हैं तो शक्ति शाम्भवी हैं; यदि शिव महेश्वर हैं तो शक्ति माहेश्वरी हैं; यदि शिव भैरव हैं तो शक्ति भैरवी हैं; यदि शिव रुद्र हैं तो शक्ति रौद्री हैं। शिव और शक्ति प्रत्येक स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं।

इस अवधारणा से एक नये सम्प्रदाय का जन्म हुआ–शाक्त सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले शक्ति को ही सर्वव्यापी ईश्वर मानते हैं। वस्तुतः शाक्त पुराणों में यह प्रश्न उठा है कि ईश्वर स्त्री हैं या पुरुष। शाक्तों ने सर्वसम्मति से यह विश्वास व्यक्त किया है कि ब्रह्माण्ड की स्रष्टा एक स्त्री ही हो सकती है, क्योंकि सृजन करना स्त्री की ही प्रकृति है पुरुष की नहीं। तंत्र के प्रभाव से ही शक्ति की उपासना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची। वेद पर आधारित ब्रह्मविज्ञान पुरुष प्रधान है, उसमें देवियाँ या शक्तियाँ गौण भूमिका में हैं। तंत्र में ऐसा नहीं है।

सभी तांत्रिक अभ्यासों की रचना अन्तर्भूत शक्ति या ऊर्जा को, जो स्त्री या ऋणात्मक तत्त्व है, जाग्रत करने के लिए की गयी है। बिना इस ऊर्जा

को जाग्रत किये चेतना कभी उद्घाटित नहीं हो सकती है। तंत्र का यह दावा है और आज विज्ञान इस दावे की सत्यता को ढूँढने में लगा है। आधुनिक भौतिकशास्त्र के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा अन्तर्परिवर्तनीय हैं। तंत्र एक कदम आगे बढ़कर कहता है कि पदार्थ, ऊर्जा और चेतना अन्तर्परिवर्तनीय हैं। लेकिन पदार्थ बिना ऊर्जा के माध्यम के विशुद्ध चेतना में परिवर्तित नहीं हो सकता है। इसलिए शक्ति शिव के समकक्ष हैं।

शरीर में शिव/शक्ति का प्रकटीकरण

तंत्र का यह मानना है कि ये शक्ति और शिव तत्त्व भाव या कल्पना मात्र नहीं हैं, बल्कि शरीर/मन के ढाँचे के अन्दर एक ठोस वास्तविकताएँ हैं। तंत्र में कहा गया है कि शक्ति, जो सूक्ष्मतम ऊर्जा का प्रकट रूप है, मेरुदण्ड के मूल में सर्प की कुण्डली के रूप में स्थित है और इसे कुण्डलिनी कहा जाता है, जबकि शिव या चेतना मनुष्य के उच्चतम विकासमूलक केन्द्र–सहस्रार में, अर्थात् सिर के शीर्ष पर स्थित है।

हालाँकि शरीर/मन, जो इन्द्रियानुभूतियों से संचालित होते हैं, की स्थूलता के कारण अधिकतर लोगों में ये दोनों शक्तियाँ प्रसुप्त रहती हैं। कुण्डलिनी की सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करने के लिए उस क्षेत्र में प्राण की मात्रा और क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक है।

एक बार जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तब उसे शिव या चेतना से मिलने के लिए सहस्रार के क्षेत्र की ओर निर्दिष्ट किया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति आरोहण के क्रम में छः चक्रों से होती हुई जाती है। ये चक्र ऊर्जा के भण्डार होते हैं और कुण्डलिनी उन्हें अति आविष्ट करती जाती है। ये चक्र नाड़ियों के संयोजक स्थल होते हैं और ये स्थूल से सूक्ष्म के बीच विभिन्न आवृत्तियों पर स्पंदित होते रहते हैं। चक्रों के अन्दर सृजनात्मक शक्तियाँ सुप्त अवस्था में रहती हैं जो दैनिक जीवन में आंशिक रूप से प्रकट होती रहती हैं। उनकी पूर्ण क्षमता को तभी जाग्रत किया जा सकता है जब कुण्डलिनी शक्ति उनको बेधती हुई शिव से मिलने के लिए आगे बढ़ती जाये।

तांत्रिक साधना का आधार

तांत्रिक साधना के सार को उपासना की तीन अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। तांत्रिकों का मानना है कि प्रत्येक क्रिया, भले ही वह कितनी

भी सांसारिक क्यों न हो, को यदि अपने अन्त:करण में स्थित या ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर को अर्पित की जाती है तो वह सार्थक हो जाती है और एक माध्यम बन जाती है जिससे अपनी चेतना को रूपान्तरित किया जा सकता है।

उपासना की तीन अवस्थाएँ इस प्रकार हैं–

1. शुद्धि–स्थूल, सूक्ष्म एवं आत्मिक तत्त्वों का शुद्धिकरण।
2. स्थिति–एकाग्रता के फलस्वरूप प्रबोधन, जो तत्त्वों के परिष्करण या शुद्धिकरण से प्राप्त होता है।
3. अर्पण–अपने अन्दर उच्चतर शक्तियों के साथ एकीकरण या ब्रह्माण्डीय चेतना की प्राप्ति।

इस प्रकार शुद्धि सभी तांत्रिक साधनाओं का आधार है, भले ही वह वामाचार, कौलाचार या वेदाचार के अभ्यासों पर आधारित हो। ये तांत्रिक साधना की तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं और उन सब ने आध्यात्मिक साधना और विकास के एक अभिन्न अंग के रूप में शुद्धि की आवश्यकता पर बल दिया है।

तंत्रों में तत्त्व शुद्धि

तंत्र ने विभिन्न प्रकार के तत्त्वों के सम्मिश्रण के कारण भारतीय दर्शन में एक क्रान्तिकारी पक्ष के रूप में अपनी अलग पहचान बना ली है। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि आध्यात्मिक अनुभूतियों का अन्वेषी साधक तांत्रिक साहित्य में से अपने लिए एक उपयुक्त मार्ग खोज निकालता हो। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास को तांत्रिक साहित्य के विषद स्रोत से प्राप्त किया गया है।

तांत्रिक अभ्यासों को उनके पवित्र सूत्रों के गहन प्रयोग, प्रतीकवाद और अनुष्ठानात्मक अभ्यासों के द्वारा अन्य अभ्यासों में से सरलापूर्वक पहचाना जा सकता है। बाह्य उपासना एवं अनुष्ठानों के द्वारा उच्चतर एवं सूक्ष्मतर शक्तियों को आकर्षित करने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना तंत्र में अनिवार्य माना जाता है। गुह्य साधना के द्वारा जिन आन्तरिक शक्तियों को उन्मुक्त किया जाता है उनके प्रतीक के रूप में उन अनुष्ठानों का सावधानीपूर्वक चयन किया जाता है और उन अनुष्ठानों में प्राय: घंटों लग जाते हैं।

इस पुस्तक में वर्णित तत्त्व शुद्धि के अभ्यास को तांत्रिक उपासना के अनुष्ठान से लिया गया है जिसके अन्तर्गत न्यास (शरीर का पवित्रीकरण), प्राण प्रतिष्ठा (मण्डल में जीवन और शक्ति की प्रतिष्ठा), पंचोपचार (उपासना

के लिए तत्त्वों को पाँच सामग्रियाँ अर्पित) और जप (मंत्रोच्चार) सम्मिलित हैं, इन पर बाद में चर्चा की जायेगी। बाह्य अनुष्ठान, अर्थात् राख लगाना और उपवास करना, और गुह्य अनुष्ठान के रूप में यंत्र एवं मण्डल का मानस दर्शन करना, इन सबको देखकर यह पहचानना आसान है कि तत्त्व शुद्धि को तांत्रिक साधना से प्राप्त किया गया है।

तत्त्व शुद्धि का उल्लेख अनेक तंत्रों में पाया जा सकता है क्योंकि यह गुह्य साधना का अनिवार्य अंग है। चौंसठ तंत्रों में से एक, तत्त्व सम्बर में यह वर्णन मिलता है कि हम तत्त्वों को किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं। महानिर्वाण तंत्र में भी इस अभ्यास को तांत्रिक उपासना के एक अंग के रूप में बताया गया है। हालाँकि श्रीमत् देवी भागवतम्, जिसमें देवी की महिमा का गुणगान किया गया है, में इस अभ्यास का पूर्ण विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य तांत्रिक ग्रंथ भी दावे के साथ यह मानते हैं कि उच्चतर अनुभवों के लिए तत्त्व शुद्धि आवश्यक है क्योंकि यह मूल तत्त्वों को परिष्कृत करती है जिनसे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होते हैं। आज हम यह बात समझने लगे हैं कि पदार्थ चेतना का ही विस्तार है, या एक ऐसा स्वरूप है जो चेतना ने धारण कर लिया है। इस प्रकार, पदार्थ रहित चेतना दीप्ति का अनुभव करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि उसे परिष्कृत किया जाये जहाँ उसे उद्भासित होना है। परिष्करण की यह प्रक्रिया तत्त्व शुद्धि के द्वारा प्रेरित होती है।

पदार्थ के अनुभव से परे जाने के लिए यह अनिवार्य है कि आप जिस अभ्यास का उपयोग कर रहे हैं उसे मन, शरीर एवं चेतना से सम्बद्ध सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञान पर आधारित होना चाहिए। आपके अस्तित्व की सम्पूर्ण रूपरेखा की रचना करने वाले तत्त्वों को नियन्त्रित करने वाले अन्तर्निष्ठ नियमों के कारण चेतना पदार्थ के परे जाने में असमर्थ होती है। तत्त्व शुद्धि इन्हीं सिद्धान्तों की अत्यन्त गहरी समझ पर आधारित होती है और उसका उद्देश्य है उनकी स्थूलता एवं सघनता को पुनर्व्यवस्थित करना।

तांत्रिक साधना के द्वारा नियत किया गया उद्देश्य है–ऊर्जा और चेतना के प्रकाश की अनुभूति प्राप्त करना, जिसकी पूर्ति के लिए तत्त्व शुद्धि एक ठोस कदम है। केवल इतना कहना पर्याप्त नहीं है कि सभी पदार्थ चेतना से विकसित हुए हैं। सत्य को न तो बौद्धिक ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है, न ही दार्शनिक तर्कों से उसका सत्यापन किया जा सकता है। यह केवल अभ्यास

एवं व्यक्तिगत अनुभव से सम्भव हो सकता है। अभ्यास एवं व्यक्तिगत अनुभव द्वारा साधक किसी भी आध्यात्मिक सत्य को समझने की क्षमता को विकसित कर सकता है।

व्यक्तिगत अनुभव, जिस पर तंत्र में बहुत बल दिया गया है, तत्त्व शुद्धि के अभ्यास से सम्भव हो जाता है। मन के सम्मुख जो उत्कृष्ट चित्रण रखा जाता है उसका चयन सावधानीपूर्वक यह संकेत देने के लिए किया जाता है कि प्रकृति में विद्यमान हर वस्तु ऊर्जा और चेतना का ही अंश है। साधक को यह समझ दी जाती है कि उसके शरीर का प्रत्येक अंग शक्ति द्वारा संचालित होता है और सतत् अभ्यास के द्वारा प्रत्येक तत्त्व दिव्य हो जाता है, यदि उसे स्थूल जड़ पदार्थ के रूप में नहीं बल्कि शक्ति के एक रूप में देखा जाये जो चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

वह ऊर्जा जो पदार्थ में कैद है, तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के द्वारा मुक्त और रूपान्तरित हो जाती है। ऊर्जा प्राणिक प्रवाह के रूप में स्पन्दित होती रहती है और जब इसके प्रवाह में वृद्धि होती है तो यह उच्चतर अनुभव उत्पन्न करती है। यद्यपि विभिन्न यौगिक अभ्यासों की रचना प्राण के प्रवाह को बढ़ाने के लिए की गयी है, किन्तु तत्त्व शुद्धि प्राण के प्रवाह में वृद्धि के साथ-साथ उसका रूपान्तर भी करती है। यह समझना भी आवश्यक है कि तत्त्व यंत्र पर आन्तरिक ध्यान के द्वारा हम केवल प्राण के स्तर को ऊँचा नहीं करते हैं बल्कि चक्रों को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। प्रत्येक तत्त्व का एक विशेष चक्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और यह क्रमश: कुण्डलिनी जागरण तथा सहस्रार की ओर उसके आरोहण की पूर्व तैयारी करता है।

साधक के क्रमविकास के स्तर के आधार पर उसे तांत्रिक साधना दी जाती है। इस प्रकार, साधना के तीन सोपान होते हैं, जिन्हें स्थूल, सूक्ष्म और परा कहा जाता है, एक उत्तरोत्तर अपने चरम बिन्दु पर पहुँचकर अगले में प्रवेश कर जाता है। प्रत्याहार की विभिन्न विधियाँ, जैसे आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, इसके अतिरिक्त पूजा के विविध स्वरूप– इन सबको स्थूल साधना की कोटि में रखा जा सकता है। सूक्ष्म साधना, जो स्थूल साधना के अभ्यास की पूर्णता के परिणामस्वरूप विकसित होती है, उसे किसी मंत्र या प्रतीक या इष्ट देवता पर धारणा की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है। यह साधक को उत्तरोत्तर ध्यान की अवस्था की ओर ले जाती है जिसे परा साधना कहा जाता है और इसकी पराकाष्ठा समाधि पर होती है।

तत्त्व शुद्धि सूक्ष्म साधना की श्रेणी में आता है, इस प्रकार वह उच्चतर अभ्यासों के विकास के लिए आवश्यक कड़ी प्रदान करता है। ऐसे किसी भी व्यक्ति में यह क्षमता हो सकती है यदि उसने कुछ वर्षों तक योग का ईमानदारी के साथ अभ्यास किया हो। जब एक साधक का शरीर और मन प्रत्याहार की अवस्था में पर्याप्त रूप से तैयार हो और मन सरलता से अन्तर्मुख हो जाता हो तब तत्त्व शुद्धि ध्यान या धारणा का विकास करता है। इस अभ्यास में स्वत: पूर्णता के साथ ध्यान होने लगता है, जिससे साधक को तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है।

2

तत्त्व शुद्धि संक्षेप में

हज़ारों वर्षों से योगी कहते आये हैं कि मनुष्य के भौतिक शरीर को आँखें जिस रूप में देख पाती हैं, वह उससे कहीं अधिक है, वह केवल मांसपेशी, रक्त और अस्थियों से अधिक कुछ और भी है, ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों के समान इसकी रचना स्थूल एवं सूक्ष्म अनेक तत्त्वों से हुई है, वे सब मिलकर उसके शरीर और मन की रचना करते हैं।

आज विज्ञान इस दावे को अभिपुष्ट कर रहा है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ विज्ञान भौतिक शास्त्र की सीमाओं को पार कर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर गया है। अब यह ऐसी सम्भावनाओं पर विचार कर रहा है कि पदार्थों की संरचनात्मक इकाइयों की रचना अरबों एलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन से हुई है जो विशेष ढंग से घूमते रहते हैं और उन्हें हम पदार्थ कहते हैं। योगियों को इसके विषय में ज्ञात था और वे इन्हें अणु तथा परमाणु कहते थे।

यदि यह सत्य है तब हमें अपने मत को इस सिद्धान्त का आधार देना होगा कि पदार्थ-जगत् का कोई अस्तित्व नहीं है, कि हम जो भी स्पृश्य, वास्तविक और पूर्ण वस्तु देखते हैं, जैसे घर की दीवार, एक कुर्सी या टेलीविज़न वस्तुत: वे ऊर्जा की अति आवेशित कण हैं जो पदार्थ की रचना करने के लिए विभिन्न आवृत्तियों के साथ परिभ्रमित होते रहते हैं और विभिन्न स्तरों पर स्पन्दित होते हैं। इस बात को योगी प्राचीन काल से कहते चले आ रहे हैं।

इससे यह ज्ञात होता है कि एक योगी किस प्रकार अपनी आत्मिक आवृत्ति को पदार्थ के अन्दर परावर्तित हो रहे अणुओं एवं परमाणुओं के स्तर तक बढ़ा सकता था और उन्हें देख सकता था। पदार्थ उसके लिए अवरोधक नहीं रह

जाता था, वह केवल ऊर्जा से आविष्ट कणों को देखता था। भारत में ऐसे अनेक प्रयोग हो चुके हैं जिनमें एक सिद्ध योगी बिना अपने पास के कमरे में गये हुए यह जान लेता है कि वहाँ क्या हो रहा है।

आज विज्ञान ने परमाणु के नाभिक को ढूँढ निकाला है और इस प्रकार पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया है। हज़ारों हज़ार वर्ष पूर्व योगियों ने शरीर और मन की प्रयोगशाला में अपने अस्तित्व के नाभिक का विस्फोट किया और यह बताया कि मानव की रचना ऊर्जा या प्राण से हुई है। यह ऊर्जा विभिन्न आवृत्तियों पर कम्पित होती है और बाद में एक शरीर के रूप में घनीभूत हो जाती है।

विज्ञान ने पदार्थ के स्थूल क्षेत्र को पार कर उसमें छिपी ऊर्जा को उद्घाटित किया, निस्संदेह यह एक बहुत बड़ी सफलता है। हालाँकि ऊर्जा प्रकटीकरण की अंतिम अवस्था नहीं है। ऊर्जा से आगे चेतना है जो ब्रह्माण्ड में हो रही हर घटना के लिए उत्तरदायी है। चेतना से ही इस शरीर के साथ-साथ सभी पदार्थ भी विकसित हुए हैं।

यद्यपि विज्ञान का इस विचार को पूरी तरह समझना अभी शेष है, फिर भी उसने इसकी सम्भावना को स्वीकार करना आरम्भ किया है। वैज्ञानिकों के एक समूह ने सृष्टि के प्रत्येक स्वरूप में चेतना की भूमिका की जाँच करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने कहा है कि एक प्रयोगशाला में एक ही प्रयोग को समान परिस्थितियों में दो व्यक्तियों के द्वारा किये जाने पर भी यह आवश्यक नहीं कि उनके एक ही परिणाम हों, क्योंकि परिणाम को अवलोकनकर्ता की चेतना प्रभावित कर देती है। इस प्रकार चेतना प्रभावी तत्त्व बन जाती है और प्रयोगकर्ता को एक अवलोकनकर्ता नहीं कहा जा सकता है; बल्कि वह केवल एक मूक सहभागी बनकर रह जाता है।

इसलिए निष्पक्ष विश्लेषण अपूर्ण है और प्रयोगशालाओं में हम पदार्थ और ऊर्जा के सिद्धान्तों की जो कल्पना करते हैं उन्हें अंतिम या पूर्ण नहीं मान लिया जाना चाहिए। परिणाम भी अवलोकनकर्ता की चेतना पर निर्भर करते हैं क्योंकि उसकी मानसिक शक्तियों के माध्यम से ही चेतना संचालित होती है; सम्भव है कि उसकी मानसिक शक्तियाँ पर्याप्ततः परिष्कृत नहीं हों या उच्च आवृत्ति के साथ अनुकूलित नहीं हों, तब ऐसी स्थिति में वह सभी जानकारियों की व्याख्या अपनी दोषपूर्ण अवधारणा के आधार पर करेगा।

दूसरी ओर, योगियों ने बहुत पहले ही अपने अनवरत चलने वाले अन्वेषण के द्वारा पदार्थ, ऊर्जा और चेतना के बीच के सम्बन्ध और अन्तर्परिवर्तनीयता का आविष्कार कर लिया था। उन्होंने कहा है कि चेतना ऊर्जा के रूप में प्रकट होती है जो पदार्थ में घनीभूत हो जाती है। यदि हम चेतना को पदार्थ से स्वतन्त्र देखना चाहते हैं तो क्रमविकास की प्रक्रिया को उलटकर उसके मूल कारण तक जाना होगा। मन और शरीर से असंगत तत्त्वों को निकालकर इसे शुद्धिकरण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे में साधना के लिए तत्त्व शुद्धि प्रभावकारी बन जाती है।

अभ्यास की रूपरेखा

शरीर और मन की रचना करने वाले सूक्ष्म तत्त्वों का शुद्धिकरण और रूपान्तरण मनन-चिन्तन एवं ध्यान के द्वारा होता है। तत्त्व शुद्धि ध्यान एवं आत्मचिन्तन का एक गत्यात्मक स्वरूप है। यह ध्यान के निष्क्रिय अभ्यास के समान नहीं है जिसमें आपको घंटों एक प्रतीक पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। न ही इसमें मन को अभ्यास के दौरान प्रकट होने वाले चित्रों का अभ्यस्त होने की आवश्यकता है। इसके विपरीत इसमें पर्याप्त मानस दर्शन की व्यापक क्षमता के साथ मन की तल्लीनता के द्वारा अमूर्त मानसिक सृजनशीलता को सहज ध्यान के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता होती है।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के द्वारा आन्तरिक सजगता अविलम्ब तत्त्व यंत्र, पाप पुरुष और प्राण शक्ति के मण्डल की रचना में लीन हो जाती है। यद्यपि साधक को कुछ विशेष निर्देशों का पालन करना होता है, किन्तु इसमें प्रचुरता से प्राप्त होने वाले अन्तर्जात मौलिक मानस दर्शन को उत्पन्न करने और उनका उपयोग करने का क्षेत्र विस्तृत होता है।

अभ्यास में पहले आप शरीर में तत्त्वों की मानसिक एवं आत्मिक सजगता और उनके यंत्रों को उत्पन्न करते हैं। आप एक साक्षी के रूप में एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व के प्रकट होने की प्रक्रिया को देखते हैं और इस प्रकार अस्तित्व के सूक्ष्मतर स्तरों की गहराइयों में डूबते जाते हैं। अपने अन्दर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा को ढूँढ लेने के बाद उस शक्ति का प्रयोग आन्तरिक असन्तुलन को दूर करने के लिए किया जाता है।

चेतना के उच्च स्तर से आन्तरिक असन्तुलन की समस्या की तह तक पहुँचने पर उन शक्तियों में सामंजस्य लाना सरल होता है, क्योंकि आप

यह उस मन के द्वारा कर रहे हैं जो समर्थ और शक्तिशाली हो गया है। इस रूपान्तर के बाद आप भौतिक शरीर में तत्त्वों को विपरीत क्रम में पुन: उत्पन्न करते हैं। उसके बाद अभ्यास के चरम बिन्दु पर प्राणशक्ति का दर्शन होता है। तत्त्वों, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता हुआ प्राण ज्ञान एवं क्रिया को उत्पन्न करता है, इसलिए प्राण के प्रति श्रद्धा प्रकट की जाती है।

अभ्यास की पराकाष्ठा पर भस्म लगाया जाता है। भस्म को लगाने और प्राण शक्ति के दर्शन के महत्त्व पर बाद में चर्चा की जायेगी। फिर भी यह प्रारम्भ में ही समझ लेना चाहिए कि इसे साधक के धार्मिक विचारों के साथ नहीं उलझाया जाना चाहिए। तत्त्व शुद्धि तंत्र विज्ञान का एक अभ्यास है और धर्म के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्रीमत् देवी भागवतम् पुराण और उपनिषद्, दोनों स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कर्म और ध्यान साधक को मोक्ष की ओर ले जाते हैं। वे एक पक्षी के दो पंखों के समान हैं। जिस प्रकार दोनों पंख जमीन से उड़ने में सहायता करते हैं, ठीक उसी प्रकार कर्म और ध्यान सजगता को तामसिक अवस्था से उच्चतर अवस्था की ओर ले जाने के लिए आवश्यक हैं। तत्त्व शुद्धि में चिदाकाश में तत्त्व यंत्रों तथा मानस दर्शन पर एकाग्र होकर ध्यान लगता है। भस्म लगाकर और उपवास करके कर्म किया जाता है।

तंत्र की मूल धारणाएँ तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में प्रकट होती हैं। सर्वप्रथम, यह अभ्यास ब्रह्माण्ड की आधारभूत ऊर्जा, प्राण शक्ति जिसने तुम्हारे शरीर और मन को जन्म दिया उसकी उपासना है। शक्ति की उपासना तांत्रिक उपासना का एक अपरिहार्य अंग है क्योंकि तंत्र का मानना है कि बिना शक्ति के घास का एक तिनका भी नहीं हिल सकता है। इसके अतिरिक्त तत्त्व शुद्धि के पारम्परिक अभ्यास में बाह्याचारों के साथ उपासना की क्रिया होती है और उच्च सत्ता के प्रति आन्तरिक श्रद्धा भी होती है।

दूसरी बात यह है कि यह अभ्यास तंत्र के साधनों का उपयोग करता है : यंत्र, मण्डल एवं मंत्र, जो तंत्र के हर पक्ष में विद्यमान होते हैं, 'काले जादू' से लेकर वाम मार्ग, तांत्रिक संगीत, कला, और वास्तुकला या केवल योग के अभ्यासों तक में। ये साधन एकाग्रता का विकास करते हैं जो तत्त्व शुद्धि के अनिवार्य अंग हैं। ध्यान एवं उन्नत गूढ़ अभ्यासों के लिए तत्त्व शुद्धि की सहायता ली जा सकती है, या केवल इसकी अपनी साधना की जा सकती है।

यद्यपि अभ्यास का उद्देश्य विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक है, फिर भी इसके लाभों का प्रभाव अस्तित्व के सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

अभ्यास की पूर्वापेक्षाएँ

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के लिए योग्यतम व्यक्ति वह है जिसने अपने शरीर और मन को हठ योग एवं अजपा जप के द्वारा पर्याप्त रूप से तैयार कर लिया है। साधक को एक घंटे तक सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन या पद्मासन में स्थिर बैठने की आवश्यकता होती है और इस दौरान उसके मन को विचलित या बहिर्मुख नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि तत्त्व शुद्धि का अभ्यास आरम्भ करने के पूर्व साधक का शरीर और मन पूर्णत: स्वस्थ होना चाहिए। इसका अभ्यास उस व्यक्ति को नहीं करना चाहिए जो शारीरिक रूप से अस्वस्थ है। अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व रोगमुक्त होने की प्रतीक्षा करना अच्छा रहेगा।

तत्त्व शुद्धि धारणा की एक पद्धति है और अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व मन को अन्तर्मुख करना आवश्यक है ताकि धारणा की अवस्था को सहजता से प्राप्त किया जा सके। यही कारण है कि श्रीमत् देवी भागवतम् पुराण यह सुझाव देता है कि साधक को तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के पूर्व प्राणायाम या त्राटक के द्वारा प्रत्याहार करना चाहिए।

तत्त्व शुद्धि साधना के लिए शरीर में चक्रों की स्थिति, सुषुम्ना में प्राण के आरोहण एवं अवरोहण, अजपा जप, तथा अन्य आवश्यक यौगिक अभ्यासों का मौलिक ज्ञान होना चाहिए।

इन पूर्वापेक्षाओं के अतिरिक्त सभी तांत्रिक साधनाओं में साधक का भाव एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि आन्तरिक भाव के द्वारा शुद्धिकरण में प्रगति होती है। यदि आप मुक्त-हृदय हैं, आपमें भक्ति और स्वीकार करने का भाव है तो अभ्यास का प्रभाव बहुत अच्छा होगा। संकीर्ण मन से कभी भी ऐक्य का अनुभव नहीं होगा। यह द्वेष और पूर्वाग्रहों की सीमाओं में बँधा रह जायेगा, जो आध्यत्मिक अनुभव के लिए बाधक हैं।

तत्त्व शुद्धि में बुद्धि की हस्तक्षेप करने वाली प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करनी होगी और भक्ति का विकास करना होगा, जो आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास के परिणामस्वरूप ही सम्भव होता है। बिना भक्ति-भाव के आध्यात्मिक साधना अहंकारपूर्ण क्रियाओं में झूलती रह जाती है और अन्तत: अभ्यास के द्वारा प्राप्त हुए उत्थानकारी अनुभव नष्ट हो जाते हैं।

3

तत्त्व शुद्धि– शुद्धिकरण की प्रक्रिया

तत्त्व दो शब्दों के मेल से बना है–तत् और त्व, तत् का अर्थ होता है 'वह' और त्व के अर्थ में एक स्थिति या गुण का भाव छिपा है। इस प्रकार तत्त्व का अर्थ 'उसकी स्थिति' या 'उसका गुण' हो सकता है। उसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है, 'तत्त्व वह है जो अस्तित्व की, स्थिति की, होने की अनुभूति उत्पन्न करे'। शास्त्रों में तत्त्व को भूत भी कहा गया है। भूत संस्कृत का ऐसा शब्द है जिसके गुणार्थकों का क्षेत्र व्यापक है, लेकिन चूँकि इसका अर्थ अंशतः तत्त्व के समरूप है इसलिए दोनों शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में होता है। पंच महाभूत या पंच तत्त्व का प्रयोग बहुप्रचलित है।

शुद्धिकरण शुद्ध करने की क्रिया है और साधना पूर्णता प्राप्ति के लिए किये गये प्रयासों की प्रक्रिया है। अतः तत्त्व शुद्धि या भूत शुद्धि साधना को इन शब्दों में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है, 'तत्त्व के शुद्धिकरण की पूर्णता जो अस्तित्व की अनुभूति उत्पन्न करे'। इस प्रकार यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम तत्त्वों के उन सूक्ष्म सत्त्वों को शुद्ध करते हैं जिनसे हमारा शरीर बना है, साथ ही उस अन्तर्निष्ठ चेतना को भी जो उन तत्त्वों से सम्बद्ध हैं।

तांत्रिक परम्परा का मानना है कि परम अनुभूति शुद्धि की अनेक अवस्थाओं के बाद प्राप्त होती है। धार्मिक, आचारगत या नैतिक अर्थ में शुद्धि नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में जो शरीर एवं मन की प्रयोगशाला में होती है। तंत्रों में सूक्ष्म तत्त्वों के शुद्धिकरण की बात कही गयी है–प्राण शुद्धि, प्राण शक्ति के तत्त्वों का शुद्धिकरण; चित्त शुद्धि, मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का शुद्धिकरण; देव शुद्धि, दिव्य तत्त्वों का शुद्धिकरण; आत्म शुद्धि, अचेतन की रचना करने वाले तत्त्वों का शुद्धिकरण। इनमें से प्रत्येक अभ्यास का सम्बन्ध

ऊर्जा के विमुक्तिकरण से और पदार्थ से चेतना के विलग होने से है। तंत्र इस बात पर बल देता है कि जब ऐसा होता है तभी वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूतियों की प्राप्ति प्रारम्भ होती है।

जिस प्रकार कुम्हार अपने मिट्टी के बर्तनों को जलते हुए आवें में डालता है उसी प्रकार तत्त्व शुद्धि साधक को उच्चतर अभ्यासों के मार्ग में आने वाले तूफ़ान और झंझावात के लिए तैयार करती है। आप वाम मार्ग, दक्षिण मार्ग या कौल मार्ग, हठ योग, क्रिया योग, कुण्डलिनी योग, राज योग या किसी भी अन्य योग के अभ्यास कर रहे हों, आपको अपनी साधना की प्रगति को तीव्र करने के लिए तत्त्व शुद्धि को उसमें सम्मिलित करना ही होगा।

शुद्धिकरण का अर्थ

तत्त्व शुद्धि साधना के द्वारा हम तत्त्वों का और उनसे सम्बद्ध इन्द्रियों तथा अवधारणाओं का भी शुद्धिकरण करते हैं। श्रवणेन्द्रिय और श्रवण तंत्रिकाएँ मंत्रोच्चार के द्वारा शुद्ध होती हैं। दृश्येन्द्रिय और दृक्तंत्रिकाएँ यंत्रों एवं मण्डलों को देखने से शुद्ध होती हैं। स्पर्शेन्द्रिय और स्पर्श-तंत्रिकाएँ अंग न्यास एवं कर न्यास के द्वारा भस्म को लगाने से शुद्ध होती हैं। घ्राणेन्द्रिय एवं घ्राण तंत्रिकाएँ प्राणायाम के द्वारा, तथा स्वाद इन्द्रिय और स्वाद तंत्रिकाएँ उपवास या सात्विक भोजन के द्वारा शुद्ध होती हैं।

हालाँकि तत्त्व शुद्धि के द्वारा शुद्धिकरण को केवल शारीरिक शुद्धता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। शुद्धिकरण का वह अर्थ केवल अल्प बुद्धि वालों के लिए होता है। तंत्र मन के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणात्मक स्तरों की शुद्धता पर बल देता है। केवल शारीरिक शुद्धता साधक को उच्चतर आयामों तक नहीं ले जा सकती है क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल स्थूल शरीर से होता है। स्थूल शरीर से परे अन्य प्रकार के शरीर या अस्तित्व के स्तर हैं जिनका सम्बन्ध मन के गुह्य स्तरों से होता है।

इन पर संस्कारों का प्रभाव पड़ता है जो मन के चेतन स्तर पर संकल्प एवं विकल्प उत्पन्न करते हैं। उन स्तरों पर होने वाली असंगति अविलम्ब क्रमश: उनके शरीरों में अन्तरित हो जाती है। जिस प्रकार कोई शारीरिक रोग शरीर की उपेक्षा और उसके प्रति असावधानी से होता है, ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म एवं कारणात्मक 'रोग' हैं जो हमारे अनुभव करने, विचार करने, प्रतिक्रिया करने

और जीवन की पारस्परिक क्रियाओं के तरीके के प्रति असावधान रहने के कारण सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर में हो जाते हैं।

हमने अपने शारीरिक रोगों से लड़ना सीखा है, किन्तु हम अपने अस्तित्व के अन्य आयामों से सम्बद्ध रोगों का सामना किस प्रकार करेंगे? ये रोग सूक्ष्म हैं और अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं। इनका अनुभव भय, तनाव, स्नायु-रोग, मनोरोग, विषाद, क्रोध और कुंठा के रूप में होता है। जब ये मनोभाव उत्पन्न होते हैं तब ये न केवल चेतन स्तर को, बल्कि शरीर एवं मन के गहरे स्तरों को भी प्रभावित करते हैं। चूँकि ये अस्पृश्य और पहुँच से बाहर हैं, हम कोई स्थायी निदान पाने में असमर्थ हैं, इसलिए वे एकत्रित होने लगते हैं और धीरे-धीरे हमारे जीवन एवं व्यक्तित्व को अव्यवस्थित कर देते हैं।

शरीर मन का प्रसार है। कोई भी सरलतापूर्वक मन और शरीर की सीमाओं को पारिभाषित नहीं कर सकता है, क्योंकि वे आपस में घनिष्ठता के साथ जुड़े हुए हैं। इससे अन्तर्निभरता उत्पन्न हो जाती है जो एक दूसरे को प्रभावित करती है। इस प्रकार अधिकतर रोग मनोदैहिक या देह-मानसिक प्रकृति के हैं। परिणामस्वरूप शारीरिक रोग मन को अव्यवस्थित कर देते हैं और बाधित मन शारीरिक रोग उत्पन्न कर देता है।

चूँकि मन शारीरिक क्रियाओं को नियन्त्रित करता है, इसलिए मानसिक स्तर के साथ-साथ शारीरिक स्तर पर भी शुद्धिकरण आवश्यक हो जाता है। मन के स्तर पर ही अस्थिरता का रोगाणु उत्पन्न होता है और वहीं उसका पोषण होता है। इसलिए जब हम शुद्धिकरण की बात करते हैं तो हमें सबसे पहले इसे मन के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में समझना चाहिए। इस संदर्भ में हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि मानसिक शुद्धि क्या है। यह केवल करुणा, दया और सत्य जैसे गुणों को आत्मनिष्ठ करना है या मन का ऐसा कोई शुद्धिकरण है जो इन गुणों से भी परे है?

इस सिद्धान्त की व्याख्या में तंत्र अन्य दर्शनों से भिन्न है। तंत्र का मानना है कि कोई भी कार्य या विचार अपने आप में अशुद्ध नहीं होता है। अशुद्धता दोषपूर्ण अवधारणा और मूल्यांकन में है। अच्छे या बुरे का मूल्यांकन सनकी समाज के पूर्वाग्रहों के आधार पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्य के आधार पर किया जा सकता है। व्यक्तिगत साधना के द्वारा अशुद्धि को समझना और उससे लड़ना सम्भव हो जाता है।

मन के सूक्ष्म स्तरों के शुद्धिकरण के बिना सजगता की उच्च अवस्था को प्राप्त करना असम्भव होता है, क्योंकि विचार/प्रतिविचार में निरंतर संलिप्त विचलित मन कभी भी एकाग्रता प्राप्त कर ध्यान नहीं कर सकता है। मन की इन विचलनशील प्रवृत्तियों को शरीर में प्राण के प्रवाह में समस्वरता लाकर या बुद्धि एवं अहंकार को चेतना से अलग करके कम किया जा सकता है, ताकि आप अनुभवकर्ता और साक्षी, दोनों बन जायें।

तत्त्वों का शुद्धिकरण

तत्त्व शुद्धि की विलक्षणता इसमें है कि इसका सम्बन्ध स्थूलतम से लेकर सूक्ष्मतम स्तरों के शुद्धिकरण की प्रक्रिया से है। तत्त्व शुद्धि साधना में शुद्धिकरण के प्रथम चरण पर स्नान और शारीरिक प्रक्षालन है, भस्म लगाना है तथा उपवास करना और भोजन को नियन्त्रित करना है। साधक को इन सांसारिक क्रियाओं के प्रति एक विशेष मनोभाव उत्पन्न करना है, क्योंकि तांत्रिक मानता है कि जीवन के सभी पक्षों को उच्च सजगता के साथ एकीकृत कर देना है। आप जिस प्रकार बैठते, बोलते, केश बनाते, अपने शरीर को धोते या कोई भी कार्य करते हैं, उससे आपकी मानसिक अवस्था परिलक्षित होती है। इसलिए तत्त्व शुद्धि की शुद्धिकरण प्रक्रिया में केवल एक या दो घंटे का ध्यान नहीं होता है, बल्कि यह चौबीस घंटे चलने वाली प्रक्रिया है।

तत्त्व शुद्धि साधना में शुद्धिकरण की यह पहली अवस्था को 'अनुशासनात्मक नियम' नहीं, बल्कि अपनी सजगता को उन्नत करने की एक विधि मानना चाहिए। तब ये क्रियायें आन्तरिक सुसंगति और अपने अस्तित्व के आनन्द को प्रकट करेंगी।

शुद्धिकरण की अगली अवस्था अधिक सूक्ष्म है, इसमें मन और प्राण की शक्तियों के द्वारा कार्य होता है जहाँ से सभी तत्त्व प्रकट हुए हैं। इन सुप्त आन्तरिक शक्तियों को जगाया जाता है और तत्त्वों के सूक्ष्म पक्षों को परिष्कृत करने के लिए निर्दिष्ट किया जाता है। तत्त्वों के सूक्ष्म तथा अन्य सभी स्तरों पर परिष्करण के लिए ऊर्जा में वृद्धि की आवश्यकता होती है, ताकि तत्त्व स्वयं सुसंगत आवृत्तियों पर स्पंदित होने लगें। इससे सन्तुलन और साम्यावस्था आ जाती है जो गहरी आन्तरिक सजगता की ओर ले जाती है।

हालाँकि तत्त्वों के द्वारा उत्पन्न किया गया कारणात्मक स्तर को शुद्ध करना सबसे कठिन होता है, क्योंकि यह चेतन मन एवं विचार से प्रभावित नहीं

होता है। इस स्तर पर रूपान्तरण के लिए संकेन्द्रित ऊर्जा की प्रबल शक्ति की आवश्यकता होती है। तत्त्व शुद्धि में यह तत्त्व बीज मंत्रों के उच्चारण और क्रमश: उनके यंत्रों का मानस-दर्शन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इनका कारणात्मक शरीर और अचेतन मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और ये गहराई में जड़ जमाये हुए संस्कारों तथा आदर्शों को, जो निस्सीम चेतना की अनुभूति को बाधित करते हैं, उन्हें बाहर निकालने में सक्षम होते हैं।

जिस प्रकार आप स्वयं को स्वच्छ रखने के लिए प्रात: स्नान करते हैं, ठीक उसी प्रकार साधना आध्यात्मिक स्नान है जिससे विषयपरक अनुभवों के मैल की सफ़ाई होती है। तत्त्व शुद्धि का उद्‌देश्य मनुष्य की चेतना के इस आयाम का शुद्धिकरण करना है जहाँ जीवात्मा पूर्णत: परमात्मा में विलीन हो जाये। तंत्र के अनुसार यही शुद्धिकरण है।

4

तत्त्व शुद्धि – तांत्रिक उपासना के अंग के रूप में

पाश्चात्य विचार-परम्परा मुख्य रूप से वस्तुनिष्ठ है, उसमें व्यक्तिनिष्ठ आन्तरिक अनुभूति को स्वीकार नहीं किया गया है। वह मूलत: ग्रीक विचारकों, हेरैक्लिटस से लेकर पारमेनाइड्स तक, के द्वारा नियत किये गये निर्देशों से प्रभावित है। आज यह अवधारणा इस विचार को स्वीकार कर रही है कि चेतना और व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति ब्रह्माण्ड की प्रकृति का निर्धारण करने वाले आवश्यक तत्त्व हैं। तंत्र ने व्यक्ति और वस्तु के इस प्रबल भेद को महत्त्व नहीं दिया, बल्कि ब्रह्माण्ड के साथ मनुष्य के व्यक्तिनिष्ठ आन्तरिक अनुभूतिमूलक सम्बन्ध की गहरी समझ के साथ एक को दूसरे में समाहित कर दिया। इस प्रकार इससे यह संकेत मिलता है कि अनुष्ठान केवल प्रतीकात्मक क्रियायें नहीं हैं बल्कि ब्रह्माण्डीय घटनाओं का प्रदर्शन है।

इस धारणा से ही तंत्र की उत्कृष्ट कल्पनाशीलता और उसके अनुष्ठान अंग का क्रमिक विकास बाह्य एवं गुह्य प्रतीकों के एक अति संश्लिष्ट प्रणाली के रूप में हुआ। प्रत्येक गुह्य अनुभूति के अनुरूप एक बाह्याचार का विकास हुआ जिसकी संरचना इस वैज्ञानिक आधार पर हुई कि व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ अनुभूतियाँ इतने प्रकार से आपस में सम्बद्ध हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि तंत्र ने प्रारम्भ से ही किये जाने वाले प्रत्येक कार्य में चेतन सजगता की भूमिका पर बल दिया है।

तंत्र ने दृढ़तापूर्वक इस विचार को परिपुष्ट किया है कि मनुष्य की चेतना निरन्तर विकसित और विस्तृत हो रही है, वह बाह्य वातावरण, जीवनचर्या, समाज के नियमों और नीतियों, भोजन की आदतों और इसी प्रकार के दैनिक कार्यों से प्रभावित होती है। साथ ही बाह्य जीवन भी चेतना के विस्तार के परिणामस्वरूप

होने वाली आन्तरिक अनुभूतियों के द्वारा प्रभावित होता है। इसलिए तंत्र एक आनुष्ठानिक, अत्यन्त व्यवस्थित और अनुशासित लोकप्रचलित विज्ञान के साथ-साथ एक गूढ़ तथा व्यापक गुह्य विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है।

तांत्रिक अनुष्ठान

मूल रूप से बाह्य तांत्रिक उपासना देवियों एवं देवताओं की पूजा है। इसके लिए मण्डल के अनुरूप दिशानिर्देशों के आधार पर मंदिरों का निर्माण होता है जिनमें देवी या देवता की गढ़ी हुई मूर्ति में दैवी शक्ति का आवाहन कर, अनुष्ठान के साथ प्राण प्रतिष्ठा करके मंदिर में स्थापित किया जाता है। प्रत्येक देवी या देवता को मंदिर के पुजारी के द्वारा स्नान कराया जाता है, उन्हें सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत किया जाता है और प्रसाद चढ़ाया जाता है।

एक शुभ तिथि को देवी या देवता की एक विशेष प्रकार के रथ में शोभा यात्रा निकाली जाती है जहाँ लोग उनके दर्शन और पूजा करते हैं। वास्तव में देवी या देवता में मानव आचरण की सभी विशेषताओं का मानवीकरण होता है जिसे तंत्र दिव्य आचरण के लिए असंगत नहीं मानता है। स्नान करने, सोने और भोग लगने का विशेष समय होता है जिस दौरान मंदिर के पुजारी के अतिरिक्त किसी को अन्दर जाने की अनुमति नहीं होती है। कुछ ऐसे भोजन होते हैं जिन्हें अधिक शुभ और अनुकूल माना जाता है। विभिन्न देवी-देवताओं के लिए भिन्न-भिन्न रंगों का विधान है और उन्हें उन्हीं रंगों के वस्त्र पहनाये जाते हैं।

जब भक्त दर्शन के लिए मंदिर जाता है तो वह नैवेद्य, पैसे, कपड़े, पुष्प, अगरबत्ती और इसी प्रकार की सामग्रियाँ आराध्य को अर्पित करता है, उन्हें साष्टांग प्रणाम करता है और उनके स्वरूप पर ध्यान करता है। दर्शन की इस क्रिया में रंग, प्रकाश, मंत्रों और संगीत की अधिकता तथा आराध्य का मण्डल, यह सब इन्द्रियों को उत्प्रेरित कर देते हैं। शक्ति या देवी की उपासना में पशु बलि दी जाती है क्योंकि इसे हितकर माना जाता है और यह भी माना जाता है कि इसके द्वारा भक्त लाभान्वित होता है।

दैनिक पूजा करने वाले पुजारी का चयन विशेष कुल से किया जाता है। उसका यह कार्य होता है कि वह भक्त की उपस्थिति में विग्रह के अन्दर दिव्य शक्ति को उतारे। इस प्रकार उसे तांत्रिक मंत्रों के उच्चारण में निपुण होने के साथ-साथ सम्पूर्ण अनुष्ठान का पूरा ज्ञान होना चाहिए। पुजारी जितना अधिक

सुयोग्य होगा, तांत्रिक उपासना का अनुष्ठान उतना अधिक सम्मोहित और आनन्द से विभोर करने वाला होगा।

बाह्य उपासना का मूल उद्‌देश्य आराध्य के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर मुक्ति प्राप्त करना है। इस प्रक्रिया में सबसे पहला कदम है पुजारी का अंग न्यास एवं कर न्यास के द्वारा स्वयं को पवित्र करना। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों का उनके मंत्रों के साथ विशेष अंगुलियों से स्पर्श किया जाता है। इसे प्रत्याहार की प्रभावशाली विधि माना जाता है, जिसमें इन्द्रियों का पूर्णरूपेण अपनयन होता है और मन को अन्तर्मुख करना होता है। इसी प्रकार का अभ्यास ईसाई धर्म में देखा जाता है जिसमें कपाल, हृदय और दोनों कन्धों को सूली का चिह्न बनाते हुए स्पर्श किया जाता है।

इसके बाद, शरीर के अन्दर पाँच तत्त्वों के मानस दर्शन के द्वारा धारणा की जाती है। एक तत्त्व का दूसरे में विलय करते हुए प्रतीकात्मक बाह्याचार–पंचोपचार के द्वारा पुजारी अपने सम्पूर्ण शरीर/मन को ब्रह्माण्ड के एक लघु स्वरूप में रूपान्तरित कर देता है और दिव्य शक्ति के अवतरण का एक उपयुक्त माध्यम बना लेता है।

सम्पूर्ण प्रक्रिया के साथ कुछ लोगों का एक समूह, जिसे इसी कार्य के लिए नियुक्त किया गया होता है, कीर्तन करता रहता है। धीरे-धीरे जब संगीत की गति बढ़ती जाती है तब पुजारी एक प्रकार से आत्मविस्मृत होकर ध्यान में चला जाता है और वह आराध्य के साथ एकात्म होकर भाव-समाधि में डूब जाता है।

एक बार जब इसमें सफलता प्राप्त हो जाती है, तब पुजारी आराध्य की आत्मा को, जिसका अनुभव उसने अपने अन्दर किया है, विग्रह में स्थापित कर देता है। अब तक वह मूर्ति एक निश्चल वस्तु मानी जा रही थी, लेकिन अब यह ईश्वर के एक स्वरूप में परिवर्तित हो गयी है।

यह विद्या जिसका प्रयोग पुजारी द्वारा किया गया, वह प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान का एक प्रभावशाली साधन है और इसका उपयोग उन साधकों द्वारा किया जाता है जो अन्य गुह्य तांत्रिक अभ्यास करते हैं। यही कारण है कि ऋष्यादि न्यास की क्रिया को रूपान्तरित किया गया है और तांत्रिक उपासना के अंग के रूप में जो इसका अभ्यास करना चाहते हैं उनके लाभ के लिए इसे सम्मिलित किया गया है।

ऋष्यादि न्यास

प्रत्याहार	
कर न्यास	
ह्रां अंगुष्ठाभ्याम् नमः	दोनों अंगूठों पर
ह्रीं तर्जनिभ्याम् स्वाहा	दोनों तर्जनियों पर
ह्रूं मध्यमाभ्याम् वशट्	दोनों मध्यमाओं पर
ह्रैं अनामिकाभ्याम् हुं	दोनों अनामिकाओं पर
ह्रूं कनिष्ठाभ्याम् वौशट्	दोनों कनिष्ठिकाओं पर
ह्रः करतल-पृष्ठाभ्याम् फट्	दोनों हथेलियों के पृष्ठ भाग पर
अंग न्यास	
ह्रां हृदयाय नमः	हृद्य स्थान पर
ह्रीं शिरसे स्वाहा	सिर पर
ह्रूं शिखायै वशट्	शिखा (चोटी) के स्थान पर
ह्रैं कवचाय हुं	दोनों भुजाओं पर
ह्रौं नेत्राय वौशट्	तीनों नेत्रों पर
ह्रः अस्त्राय फट्	अस्त्र पर, जो मन व शरीर की शक्तियों के प्रभाव का संकेत करता है।

धारणा

तत्त्व शुद्धि

जिस प्रकार पुस्तक में वर्णित है।

पंचोपचार

लं पृथिव्यात्मने नमः। गन्धं समर्पयामि।
हं आकाशात्मने नमः। पुष्पं समर्पयामि।
यं वायवात्मने नमः। धूपं आघ्रापयामि।
रं अग्न्यात्मने नमः। दीपं दर्शयामि।
वं अमृतात्मने नमः। नैवेद्यं समर्पयामि।

ध्यान

इष्ट देवता पर ध्यान।

5

प्राण शक्ति

प्राण शरीर में यूँ ही नहीं घूमता रहता है, बल्कि यह एक विशेष स्वरूप में अलग-अलग आवृत्तियों के कम्पन उत्पन्न करता है। ये विभिन्न आवृत्तियाँ भौतिक शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्म अंगों की भी रचना करती हैं। शारीरिक स्तर पर हम भिन्न-भिन्न अंगों और उनके अवयवों को देख सकते हैं, जबकि सूक्ष्म स्तर पर ऊर्जा के अंगों और उनके अवयवों का भी अनुभव कर सकते हैं। तंत्र एवं योग के अनुसार इन्हें चक्र, नाड़ी, कुण्डलिनी शक्ति, चित्त शक्ति, प्राण वायु एवं पंचतत्त्व कहा जाता है।

प्राण ब्रह्माण्डीय तथा लघु ब्रह्माण्डीय दोनों होता है, और यह जीवन का आधार होता है। बिना प्राण के हम सड़ते हुए शव के समान हो जायेंगे, हममें देखने, चलने, सुनने इत्यादि की क्षमता नहीं रहेगी। इसे समझाने के लिए *प्रश्नोपनिषद्* की एक सुन्दर कथा है–

एक दिन सभी इन्द्रियों एवं प्राण के बीच विवाद चल रहा था। एक के बाद एक, सभी इन्द्रियों ने हठपूर्वक यह कहना आरम्भ किया कि यदि वे कार्य करना बन्द कर दें तो जीव की मृत्यु हो जायेगी, इस प्रकार उसका सम्पूर्ण अस्तित्व उन पर ही निर्भर करता है। कानों ने कहा, "यदि मैं श्रवण शक्ति को रोक लूँ तो मनुष्य अवश्य ही जीवित नहीं रह पायेगा।" आँखों ने कहा, "बिना दृष्टि के मनुष्य अन्धकार में भटक जाता है, और यदि मैं स्वयं को समेट लूँ तो वह जीवित नहीं रहेगा।" और इस प्रकार सब ने अपने-अपने गुणों का बखान किया।

अन्त में प्राण, जो यह सब शान्तिपूर्वक सुन रहा था, बोला, "ओ दुराग्रही मित्रों, यदि मैं इस क्षण स्वयं को समेट लूँ तो तुम सब में कार्य करने की शक्ति

या क्षमता नहीं रह जायेगी।" इतना कहकर प्राण ने स्वयं को समेटना प्रारम्भ कर दिया, सबसे पहले कानों से, उसके बाद आँखों से, नाक से तथा अन्य अंगों से भी। ज्यों-ज्यों शरीर पर से इन्द्रियों का प्रभाव समाप्त होता गया, वे भय से काँपने लगी, और तब उन्हें प्राण का महत्त्व समझ में आया। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए अपनी हार मान ली और प्राण से लौट आने का निवेदन किया।

इस कथा से यह स्पष्ट होता है कि प्राण के बिना आँखों की पलकें तो झपक नहीं सकतीं, तो उन सभी कार्यों का क्या कहा जाये जो पूरे जीवन में हमें करना होता है। सृजन में प्राण की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यद्यपि हम प्राण के सहारे ही कार्य कर पाते हैं, फिर भी हममें से अधिकतर लोग इसका पूर्ण विकास नहीं कर पाये हैं। अधिकतर लोगों में प्राण इतना क्षीण होता है कि ऐसा कोई दिन व्यतीत नहीं होता जब थकान का अनुभव नहीं होता हो, तब अतिरिक्त प्राण उत्पन्न करके आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभूति के प्रकट होने की आशा कैसे की जाये।

प्राण शक्ति के स्वरूप

मनुष्य के शरीर में प्राण या महाप्राण की ब्रह्माण्डीय अभिव्यक्ति कुण्डलिनी के रूप में होती है। सृष्टि से प्रलय तक की सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय अनुभूति कुण्डलिनी की परतों में सन्निहित होती है। इसलिए इसे आत्म शक्ति या परा शक्ति कहते हैं। सभी जीवित प्राणियों में दिव्य चेतना सबसे पहले प्राण में परिवर्तित होती है और चूँकि कुण्डलिनी प्राण का विशाल भंडार है इसलिए इसे प्राण शक्ति भी कहते हैं।

कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति 'कुण्ड' से हुई है जिसका अर्थ होता है 'गर्त्त' या 'कोटर'। कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में अन्तर्निष्ठ ऊर्जा है जो मूलाधार/गर्भाशय ग्रीवा में निष्क्रिय रूप में पड़ी रहती है। जब यह ऊर्जा पूरी क्षमता के साथ मुक्त होती है तब भौतिक शरीर के केन्द्रीय स्नायु तंत्र या प्राणिक शरीर की सुषुम्ना नाड़ी से होती हुई आरोहण करती है।

हालाँकि सामान्यत: प्राण शक्ति आंशिक रूप में ही संयोजक नाड़ियों, इड़ा एवं पिंगला के द्वारा मूलाधार चक्र से मुक्त होती है। इड़ा एवं पिंगला कम तीव्रता वाली ऊर्जा का संवहन करने में ही सक्षम हैं–वे मन और शरीर को अनुप्राणित करती हैं किन्तु पूर्ण क्षमता के साथ नहीं। केवल कुण्डलिनी शक्ति या प्राण शक्ति या आत्म शक्ति की पूर्ण प्रबलता ही सम्पूर्ण चेतन एवं प्राणिक

कार्यों को सक्रिय कर सकती है। पिंगला नाड़ी भी प्राण शक्ति का संवहन करती है, लेकिन यहाँ हमें प्राण शक्ति के दो अर्थों से भ्रमित नहीं होना चाहिए। एक स्तर पर यह कुण्डलिनी शक्ति के रूप में परा है; दूसरे स्तर पर यह प्राण शक्ति के रूप में पिण्ड है जिसका संवहन पिंगला द्वारा किया जाता है।

प्राण शक्ति की अभिव्यक्ति छः प्रमुख चक्रों के रूप में भी होती है, जो प्राणों के भण्डारगृह होते हैं, और मेरुदण्ड के एक सिरे से दूसरे सिरे तक स्थित रहते हैं। इस ऊर्जा परिपथ में सबसे निचला चक्र मूलाधार है जो पुरुषों में जननेन्द्रिय व गुदा के मध्य तथा स्त्रियों में योनि-ग्रीवा के पास स्थित रहता है, तथा अनुत्रिक तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है। मूलाधार चक्र के दो अंगुल ऊपर अगला चक्र रहता है जो स्वाधिष्ठान चक्र कहलाता है तथा वस्तिप्रदेश तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है। इनके भी ऊपर मणिपुर चक्र रहता है जो सौर तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है। मेरुदण्ड में हृद्य क्षेत्र में अनाहत चक्र रहता है जो हृद्य तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है। गर्दन के मध्य में स्थित कण्ठ कूप में विशुद्धि चक्र रहता है, जो ग्रीवा तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है। मेरुदण्ड के सबसे ऊपरी सिरे पर, जहाँ मेरुदण्ड कपाल से संधि करता है, वहाँ आज्ञा चक्र स्थित है और यह भौतिक शरीर के पियूष तंत्रिका जालक से सम्बद्ध रहता है।

प्रत्येक चक्र की रचना एक मौलिक तत्त्व से होती है। मूलाधार के अन्दर पृथ्वी तत्त्व; स्वाधिष्ठान में जल तत्त्व; मणिपुर में अग्नि तत्त्व; अनाहत में वायु तत्त्व; विशुद्धि में आकाश तत्त्व होता है। जिस तत्त्व विशेष के द्वारा प्रत्येक चक्र नियन्त्रित होता है, यह संकेत देता है कि चक्र किस स्तर पर कम्पित होता है और कार्य करता है।

हमारी चेतना, विचारों एवं कार्यों का सम्पूर्ण क्षेत्र इन चक्रों की क्रियाओं के द्वारा ही नियन्त्रित होता है। चक्रों को पिंगला नाड़ी से ऊर्जा प्राप्त होती है और वे कुण्डलिनी के आरोहण से पूरी तरह क्रियाशील होते हैं। वे जब तक पूर्णतः क्रियाशील नहीं होते हैं तब तक हमारे सभी कार्य और अनुभव सीमित होते हैं। तत्त्व शुद्धि साधना में प्रत्येक तत्त्व पर ध्यान के द्वारा ये चक्र सीधे प्रभावित होते हैं।

ऊर्जा क्षेत्रों के रूप में प्राण शक्ति

शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित करने के लिए प्राण शक्ति पाँच प्रमुख प्राण वायु के रूप में भी प्रकट होती है जिन्हें प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान

कहा जाता है। इनके अतिरिक्त पाँच उपप्राण भी होते हैं। दोनों मिलकर ये दस प्राण मानव शरीर की सभी प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं, जैसे पाचन, उत्सर्जन, छींकना, पलक झपकाना, बोलना, हिलना, श्वास लेना इत्यादि।

इन सबमें सबसे प्रभावशाली वायु प्राण एवं अपान हैं। प्राण अन्दर की ओर गतिमान शक्ति है और ऐसा माना जाता है कि वह नाभि से गले तक ऊर्ध्वमुखी गतिमान क्षेत्र का निर्माण करता है। अपान बहिर्गामी शक्ति है जिसके विषय में कहा जाता है कि वह नाभि से गुदा तक निम्नमुखी गतिमान क्षेत्र का निर्माण करता है। प्राण एवं अपान, दोनों शरीर के अन्दर स्वत: गतिमान रहते हैं, लेकिन तांत्रिक एवं यौगिक अभ्यासों के द्वारा इन्हें नियन्त्रित किया जाता है। उपनिषदों में कहा गया है कि विपरीत दिशाओं में गतिमान प्राण एवं अपान पर ऐसी विधि का प्रयोग किया जाता है जिससे वे दोनों नाभि में समान पर आपस में मिलते हैं और उसके परिणामस्वरूप कुण्डलिनी जागरण होता है।

प्राण की भौतिक, सूक्ष्म एवं ब्रह्माण्डीय अभिव्यक्ति के इस सम्पूर्ण संजाल के माध्यम से प्राण शक्ति मनुष्य के अस्तित्व की धारणा का सृजन, पालन और अन्तत: विनाश करती है।

देवी के रूप में प्राण शक्ति

अनुभवातीत क्षेत्र में शक्ति की अवधारणा लिंग के संदर्भ से परे है। हालाँकि अन्त:स्थ क्षेत्र में शक्ति को देवी के रूप में चित्रित किया गया है। शक्ति शब्द स्वयं ही स्त्री तत्त्व को दर्शाता है और इसी अवधारणा के आधार पर देवियों के समूह का विकास हुआ। उनमें से हर एक देवी परम शक्ति का प्रतीक है, या तो वे पूर्ण शक्ति हैं या अंश रूपिणी हैं। शक्ति के अनेक पक्ष हैं और वे सभी व्यक्ति के अन्दर शक्तियों के विभिन्न पक्षों को दर्शाते हैं। काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती एवं पार्वती पूर्ण शक्तियाँ हैं; अंश रूपिणियों में से कुछ हैं डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी।

मानव शरीर में पूर्ण शक्तियों को कुण्डलिनी के आरोहण के माध्यम से दर्शाया गया है और अंश रूपिणियाँ चक्रों की सक्रियता के रूप में प्रकट होती हैं। जिस प्रकार पौधे में पानी डालने के कुछ दिनों के बाद सारे पुष्प प्रस्फुटित हो जाते हैं, उसी प्रकार जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है तो वह अंश रूपिणियों की क्षमता को पूर्णत: प्रकट करने के लिए ऊर्जा प्रदान करके उन्हें क्रियाशील कर उनका पोषण करती है।

प्राण शक्ति का मण्डल

तत्त्व शुद्धि में प्राण शक्ति के रूप में कुण्डलिनी को एक सुन्दर देवी के रूप में दर्शाया गया है। मानव अस्तित्व के हर पक्ष को एक मण्डल के रूप में दर्शाने की परम्परा तंत्र का एक आवश्यक अंग है। ये मण्डल मात्र प्रतीक नहीं होते, ये मनुष्य के अज्ञात, अवचेतन एवं अचेतन पक्ष को दर्शाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इन प्रतीकों पर ध्यान करने से उन संस्कारों का विस्फोट होता है जो रचनात्मकता एवं प्रतिभा को अवरुद्ध किये रहते हैं।

तत्त्व शुद्धि में इस प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए प्राण शक्ति का मण्डल बनाया जाता है। उनके स्वरूप के विभिन्न पक्षों को अकारण नहीं चुना गया है, बल्कि चेतना के विशेष स्तरों को अभिव्यक्त करने के लिए सावधानीपूर्वक उनका चुनाव किया गया है। प्राण शक्ति की त्वचा का वर्ण 'उगते हुए सूर्य के समान लाल' होता है, जो उनके द्वारा दिये जाने वाले वरदानों का संकेत है। अपनी हीनताओं पर विजय पाने के लिए और संस्कारों एवं सांसारिक जीवन के अधीन रखने वाली शक्तियों को वशीभूत करने के लिए देवी के लाल रंग के स्वरूप पर ध्यान किया जाता है। लाल मूल रंग है जो रजोगुण या गत्यात्मकता के गुण को दर्शाता है। चूँकि प्राण एक जीवनदायिनी शक्ति के रूप में सभी जीवित प्राणियों को क्रियाशील होने के लिए प्रेरित करता है, लाल रंग भी प्राण की गत्यात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है।

उनके छ: हाथ उनके द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य में उनकी दक्षता के उच्च स्तर को दर्शाते हैं और छहों हाथों में धारण की गयी प्रत्येक वस्तु मानव अस्तित्व के विभिन्न पक्षों पर उनकी विजय का प्रतीक है। अंकुश द्वेष को नष्ट करने का प्रतीक है और पाश विभिन्न प्रकार के राग या इच्छाओं पर विजय का प्रतीक है। धनुष मन की पूर्ण एकाग्रता की स्थिति का प्रतीक है; पाँच बाण पाँच तन्मात्राओं, पाँच तत्त्वों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच कर्मेन्द्रियों के प्रतीक हैं जो एकाग्र हुए मन के द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। त्रिशूल तीन गुणों की साम्यावस्था और सन्तुलन की अवस्था का प्रतीक है; और अन्तत: टपकते हुए रक्त वाला नरमुण्ड या कपाल अहंकार के विनाश और विलोपन का प्रतीक है।

उनकी मुस्कराती हुई सद्भावपूर्ण मुखाकृति यह दर्शाती है कि प्राण शक्ति सहर्ष वरदान देने के लिए तत्पर हैं, इस प्रकार उनके स्वरूप पर किया गया



देवी के रूप में प्राण शक्ति

ध्यान निश्चित रूप से सफल होता है। उनके तीनों उन्मीलित चक्षु हर क्षेत्र में उनकी दृष्टि का होना दर्शाते हैं और विशेष रूप से तीसरा नेत्र उनकी ब्रह्माण्डीय दृष्टि का प्रतीक है। कमल के जिस पुष्प पर वे विराजमान हैं, वह दिव्य शक्तियों या सिद्धियों का प्रकट होना दर्शाता है।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास का सम्बन्ध प्राण शक्ति के विविध पक्षों से है। इसके अतिरिक्त चूँकि विभिन्न आवृत्तियों पर प्राण के कम्पन के द्वारा तत्त्वों का सृजन होता है इसलिए हम प्राण शक्ति के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं, जो चेतना से पदार्थ और पदार्थ से चेतना के रूप में हमारे विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। तत्त्व शुद्धि में प्राण शक्ति पर ध्यान करना इसका चरम बिन्दु है।

6

तत्त्वों का विकास

तंत्र कहता है पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड समाया हुआ है, अंतर्निहित है– *यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।* इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति में ब्रह्माण्ड के उद्भव और विलय के सभी नियम अन्तर्निहित हैं। जिस प्रकार डी. एन. ए. (आनुवांशिक गुणसूत्र) अणुओं में प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ अन्तर्निष्ठ होती हैं उसी प्रकार मनुष्य की आणविक संरचना में ब्रह्माण्ड की आदिरूप विशेषताएँ अन्तर्भूत होती हैं। सृजन एवं विलय की इस ब्रह्माण्डीय अनुभूति को कुण्डलिनी शक्ति के रूप में दर्शाया गया है।

कुण्डलिनी परा शक्ति है जो ऊर्जा का सूक्ष्मतम स्वरूप है और शुद्ध चेतना की अविभाज्य अंग है। यद्यपि ऊर्जा एवं चेतना ने पृथक् होकर विविध रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न किया, फिर भी वे भौतिक शरीर के अन्दर परस्पर मिलन के लिए सतत् प्रयत्नशील रहती हैं ताकि उस ब्रह्माण्डीय ऐक्य की पुन: अनुभूति हो सके जहाँ से उनका उद्भव हुआ है।

तंत्र के प्रतीक शास्त्र में भौतिक शरीर के अन्दर इन दो ब्रह्माण्डीय तत्त्वों को प्रदर्शित करने के लिए अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। शक्ति मेरुदण्ड के आधार में सुप्तावस्था में रहती है जिसे एक कुण्डलित सर्प, कुण्डलिनी के रूप में दर्शाया गया है। शिव या चेतना उच्चतम आध्यात्मिक केन्द्र, सहस्रार चक्र में स्थित हैं जो सिर के शीर्ष पर एक स्फटिक शिवलिंग के रूप में विद्यमान रहते हैं। तंत्र के अभ्यास के द्वारा जब परा शक्ति कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तब चेतना शरीर के पदार्थ से मुक्त हो जाती है।

यह प्रक्रिया कई अवस्थाओं में पूरी होती है। सहस्रार में ऊर्जा एवं चेतना (शक्ति/शिव) के परम योग के पूर्व चक्रों में कई स्तरों पर उनका

आपस में मिलन होता है। सहस्रार चक्र में उनका परम योग, अन्ततः सृष्टि के पूर्व शिव और शक्ति के मिलन की मूल अवधारणा की प्रतिकृति है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार एक से अनेक और पुनः एक हो जाने की सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया हममें से प्रत्येक के अन्दर अन्तर्निष्ठ है।

तांत्रिक दर्शन का यह मानना है कि पदार्थ एवं ऊर्जा के ब्रह्माण्ड का विकास आदिस्वरूपा शक्ति से हुआ है जो विशुद्ध ऊर्जा की प्रतीक हैं। उनके संपूरक एवं सह-स्रष्टा शिव जो विशुद्ध चेतना हैं, चेतन बुद्धि के रूप में शक्ति एवं उनके स्वरूपों से बिल्कुल भिन्न हैं। मूल अवस्था में शिव सदैव सर्वव्यापी एवं शाश्वत हैं, किन्तु निष्क्रिय रहते हैं। उनके विपरीत शक्ति सदैव क्रियाशील रहती हैं। शक्ति में सृजन की अन्तर्निष्ठ क्षमता होती है और इसलिए उन्हें मूल प्रकृति के रूप में उत्पत्ति का मूल आधार माना जाता है।

यद्यपि शिव और शक्ति वैयक्तिक चेतना को उत्पन्न करने के लिए क्षणिक रूप से विलग होते हैं, किन्तु अपने ब्रह्माण्डीय अभिव्यक्ति में वे सदा एकात्म रहते हैं। इसलिए शिव एवं शक्ति के दोनों पक्ष हैं, ब्रह्माण्डीय एवं वैयक्तिक, अर्थात् व्यापक एवं लघु। शिव/शक्ति का वैयक्तिक पक्ष द्वैत सत्ता के रूप में प्रकट होता है जो केवल माया के तमाच्छादन के कारण होता है; भ्रान्त करने की क्षमता शक्ति तत्त्व में अन्तर्निहित है।

शिव एवं शक्ति अव्यक्त या अप्रकट ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त व्यक्त या प्रकट ब्रह्माण्ड को भी उत्पन्न करते हैं। सृजन की ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया का प्रारम्भिक प्रकटीकरण नाद, बिन्दु एवं कला के रूप में होता है। नाद का शाब्दिक अर्थ होता है 'कम्पन'। अव्यक्त रूप में यह ब्रह्माण्डीय कम्पन की स्थिति में होता है। इसका व्यक्त रूप विभिन्न आवृत्तियों की ध्वनियों में प्रकट होता है। बिन्दु नाभिक का प्रतीक है, और कला एक किरण या शक्ति है जो बिन्दु या नाभिक से निस्सरित होती है।

विज्ञान ने इसके समरूप जो चित्र अंकित किया है उसमें कण और ऊर्जा तरंगें हैं। प्रकाश कणों से बना है या तरंगों से, यह एक बड़े विवाद का विषय है जो वैज्ञानिकों को परेशान किये हुए है और आज तक अनसुलझा है। इसका उत्तर विज्ञान ने कभी नहीं दिया, बल्कि यह कह दिया कि यह दोनों है। तंत्र ने यह बताया है कि कण (बिन्दु) और किरण

या तरंग (कला), दोनों का अस्तित्व है। इसके अतिरिक्त इस तथ्य पर भी बल दिया है कि यह मूलभूत द्विविधता भौतिक सृष्टि के अखण्ड विस्तार को प्रभावित करती है।

शिव एवं शक्ति ब्रह्माण्ड में नाद, बिन्दु एवं कला के रूप में प्रकट होकर आपस में पारस्परिक क्रिया करते हैं और उन स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्वों को उत्पन्न करते हैं जिनसे मनुष्य की रचना होती है। तंत्र में यह माना जाता है कि मानव शरीर स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक स्तरों पर छत्तीस तत्त्वों का बना हुआ है। इन छत्तीस तत्त्वों में मानव का अस्तित्व तथा अनुभव सर्वांशत: सम्मिलित होता है। हालाँकि, मानव स्वरूप की चरम परिभाषा में पंद्रह पूरक तत्त्वों को भी सम्मिलित किया गया है, इस प्रकार कुल इक्यावन तत्त्व हुए जो देवनागरी लिपि की वर्णमाला के इक्यावन अक्षरों के तदनुरूप हैं। ये पूरक तत्त्व जो शरीर में होते हैं, वे सप्त धातु, पंच वायु एवं त्रिगुण हैं।

तत्त्व शुद्धि में हम इनमें से केवल पचीस का ही उपयोग करते हैं। हालाँकि, हम जिन तत्त्वों से बने हुए हैं, उनको व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए तांत्रिक दृष्टि से सृष्टि की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। छत्तीस तत्त्वों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–शिव तत्त्व, विद्या तत्त्व एवं आत्म तत्त्व।

शिव तत्त्व

शिव तत्त्व पाँच शुद्ध तत्त्वों का बना हुआ है जो परम चेतना से सम्बद्ध हैं। प्रथम दो शिव तत्त्व हैं शुद्ध चेतना के रूप में शिव या चित् जो शुद्ध ऊर्जा के रूप में शक्ति या चित् शक्ति के साथ संयुक्त है। चित् शक्ति में अन्तर्निहित तीन रचनात्मक पक्ष हैं–इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान।

ये पाँच परम तत्त्व ब्रह्माण्ड या सर्वव्यापी चेतना के अंग हैं जो शिव/शक्ति की संयुक्ति या ब्रह्माण्डीय अनुभव के रूप में प्रतीकित हैं। चित् शक्ति के तीन अन्तर्निष्ठ पक्ष इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान सृजन के पूर्व तक निष्क्रिय रहते हैं। सृजन प्रारम्भ होने के क्षण तक शिव तत्त्व की रचना करने वाले ये पाँच तत्त्व एक पूर्ण इकाई के रूप में रहते हैं; न तो उनका विभाजन होता है, न ही उनमें कोई विविधता आती है। इनकी पूर्णता के विभाजन के प्रथम संकेत के साथ ही विद्या तत्त्वों का विकास होता है जो लघु चेतना का अंग हैं।

विद्या तत्त्व

विद्या तत्त्व सात सूक्ष्म तत्त्वों से बना हुआ होता है और यह परम चेतना एवं आच्छादित चेतना, दोनों से सम्बन्धित होता है। ये लघु चेतना के सर्वव्यापी तथा अनुकूलित तत्त्व होते हैं। विद्या तत्त्व का विकास उन सीमाओं के लिए उत्तरदायी होता है जो दूसरी दृष्टि से सर्वव्यापी तत्त्वों पर प्रकट होने लगती हैं। इस अवस्था में शिव या चेतना स्वत:पूर्ण होती है, किन्तु यह चित् शक्ति के आवरण, अर्थात् माया से ढकी हुई होती है। यहाँ माया सीमाबद्ध करने वाले पाँच तत्त्वों के माध्यम से कार्य करती है जिन्हें कंचुक कहा जाता है। कंचुक का शाब्दिक अर्थ होता है 'आवरण', और ये एक साथ एक कोष के समान कार्य करते हैं और मूल तत्त्व को अवरुद्ध कर देते हैं। प्रत्येक कंचुक शिव/शक्ति की ब्रह्माण्डीय शक्ति के एक पक्ष को अवरुद्ध करता है।

माया से उत्पन्न हुए ये अवरोधक तत्त्व या कंचुक इस प्रकार हैं:

1. कला– क्रिया शक्ति को सीमित करती है।
2. अविद्या विद्या– ज्ञान शक्ति को सीमित करती है।
3. राग– इच्छा एवं आसक्ति उत्पन्न कर इच्छा शक्ति को सीमित कर देती है जिससे असीमित असन्तोष उत्पन्न होता है।
4. काल– जन्म, वृद्धि, परिपक्वता, ह्रास, मृत्यु जैसी समय की अवधारणा उत्पन्न कर अनन्त के अस्तित्व को सीमित कर देता है।
5. नियति– भाग्य और नियति की अवधारणा उत्पन्न कर पुरुषार्थ को सीमित कर देती है, इस प्रकार मनुष्य जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र से बँध जाता है।

इस प्रकार हम इस अवस्था में शिव/शक्ति की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता को माया के आवरण से आच्छादित पाते हैं, इससे द्वैत का बोध उत्पन्न होता है। वस्तुत: इसका तात्पर्य क्या है; यद्यपि सृजन के पूर्व तक शिव एवं शक्ति एक इकाई चेतना के रूप में स्थित थे, जबकि सृजन की प्रक्रिया के दौरान वे माया की शक्ति के कारण विविधतापूर्ण प्रतीत होने लगते हैं। तथ्यत: वे हमेशा वही रहते हैं जो वे हैं, और मनुष्यों में परमात्म चेतना उनके एकत्व को दर्शाती है, जो जीवात्मा को स्वयं से भिन्न प्रतीत होती है।

आत्मनिष्ठ रूप में माया की इस प्रक्रिया का परिणाम विषय एवं वस्तु के द्विभाजन के रूप में होता है जो शिव एवं शक्ति के एकात्म अनुभव के विपरीत है। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से इसके परिणामस्वरूप उन विभिन्न भौतिक स्वरूपों

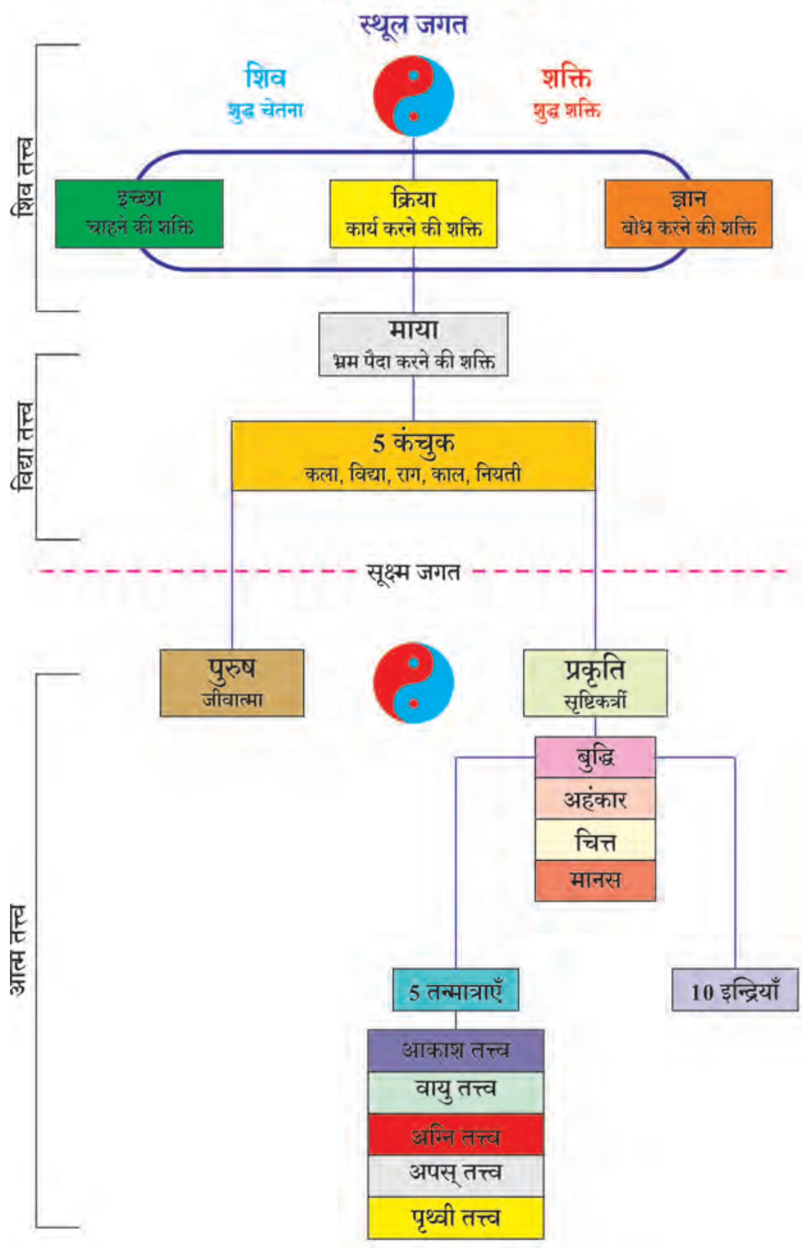
की रचना होती है जिनसे ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। विकासक्रम की ऐसी ही अवस्था में द्वयात्मकता, विभाजन और विपर्ययों का जन्म होता है। इससे आत्म तत्त्व का विकास होता है जो भौतिक जगत की रचना करता है। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में इन्हीं आत्म तत्त्वों से हमारा सम्बन्ध होता है।

आत्म तत्त्व

आत्म तत्त्व की रचना पचीस तत्त्वों से हुई है जिनका सम्बन्ध अवगुंठित चेतना से है। वे वैयक्तिक चेतना के अनुकूलित तत्त्व हैं। विकास की इस अवस्था में ब्रह्माण्डीय तत्त्व विद्या तत्त्व की शक्ति के द्वारा भौतिक जगत् में नानारूपों में प्रकट होते हैं। सर्वप्रथम शिव तत्त्व स्वयं को पुरुष तत्त्व में परिवर्तित कर लेता है जो प्रत्येक मनुष्य के अन्तरतम का केन्द्रबिन्दु होता है। शक्ति तत्त्व स्वयं को प्रकृति तत्त्व में परिवर्तित कर लेता है, यह कुण्डलिनी की सुप्त शक्ति का प्रतीक है जो मेरुदण्ड के आधार में स्थित होती है, हालाँकि इस शारीरिक स्वरूप में शिव/शक्ति की मूल शक्ति हमेशा के लिए माया के द्वारा अवरुद्ध कर दी जाती है।

प्रकृति के प्रकट होने के बाद का विकास परिणाम कहलाता है, क्योंकि अब चेतना काल एवं स्थान या विषय एवं वस्तु के स्वरूप में विभाजित हो चुकी है। इसके पूर्व विकास के विषय में जो कहा जाता है वह वास्तव में एक ऐसी स्थिति है जिसमें शक्ति सृजन के लिए नानारूप ग्रहण करती है, किन्तु बिना प्रकट हुए। इस प्रकार, शक्ति तत्त्व अपने मूल स्वरूप को कायम रखते हुए नाद, बिन्दु, कला, इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं माया के स्वरूपों को धारण करती है।

चित् शक्ति के तीन अन्तर्निष्ठ पक्ष इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान अब स्वयं को तीन गुणों में रूपान्तरित कर लेते हैं–तमस्, रजस् एवं सत्व। इच्छा शक्ति तमोगुण में परिवर्तित हो जाती है जो निष्क्रियता का प्रतीक है; क्रिया शक्ति रजोगुण में रूपान्तरित होती है जो क्रियाशीलता का प्रतीक है और ज्ञान शक्ति सत्त्व गुण में परिवर्तित होती है जो प्रकाशमय ज्ञान का प्रतीक है। ये तीनों एक साथ मिलकर सम्पूर्ण मानव जीवन पर शासन करते हैं और अगली वर्गीकृत अवस्था को नियन्त्रित करते हैं जो इस प्रकार हैं–बुद्धि, अहंकार, मनस् एवं चित्त जो मनुष्य के अन्त:करण की रचना करते हैं जिसके माध्यम से चेतना कार्य करती है।



वैयक्तिक तत्त्वों का उद्भव
स्थूल जगत
शिव
शुद्ध चेतना
शक्ति
शुद्ध शक्ति
शिव तत्त्व
इच्छा
चाहने की शक्ति
क्रिया
कार्य करने की शक्ति
ज्ञान
बोध करने की शक्ति
माया
भ्रम पैदा करने की शक्ति
विद्या तत्त्व
5 कंचुक
कला, विद्या, राग, काल, नियती
सूक्ष्म जगत
पुरुष
जीवात्मा
प्रकृति
सृष्टिकर्त्री
आत्म तत्त्व
बुद्धि
अहंकार
चित्त
मानस
5 तन्मात्राएँ
10 इन्द्रियाँ
आकाश तत्त्व
वायु तत्त्व
अग्नि तत्त्व
अपस् तत्त्व
पृथ्वी तत्त्व

अन्तःकरण

1. बुद्धि– महत् के नाम से भी जानी जाती है, उच्चतम मेधा जो सत्त्व गुण के प्रभाव में अपनी पूर्ण क्षमता को प्रकट करती है।
2. अहंकार– व्यक्तित्व या अहं जो 'स्व' के अस्तित्व पर बल देता है।
3. मनस्– मन या विचार/प्रतिविचार करने की मानसिक क्षमता।
4. चित्त– संस्कारों की समष्टि।

यहीं पर पदार्थ आत्मा से अधिक प्रबल हो जाता है और सृजन में विविधता उत्पन्न करता है। अहंकार स्थूल तत्त्वों, इन्द्रियों, तन्मात्राओं (सूक्ष्म तत्त्व) तथा भौतिक शरीर की रचना करने वाले तत्त्वों को उत्पन्न करता है। स्थूल तत्त्व जिन्हें पाँच की संख्याओं में वर्गीकृत किया गया है, वे इस प्रकार हैं–

तन्मात्राएँ

1. शब्द– ध्वनि; आकाश तत्त्व।
2. स्पर्श– स्पर्श; वायु तत्त्व।
3. रूप– रूप; अग्नि तत्त्व।
4. रस– स्वाद; अपस् (जल) तत्त्व।
5. गंध– गंध; पृथ्वी तत्त्व।

तत्त्व

1. आकाश– शून्य एवं स्थान के लिए उत्तरदायी।
2. वायु– निरंतर गति के लिए उत्तरदायी।
3. अग्नि– ऊष्मा के लिए उत्तरदायी।
4. अपस्– जल; तरलता के लिए उत्तरदायी।
5. पृथ्वी– सम्बद्धता एवं भार के लिए उत्तरदायी।

ज्ञानेन्द्रियाँ

1. श्रोत्र– कान; श्रवणेन्द्रिय; ध्वनि की अवधारणा।
2. त्वचा– त्वचा; स्पर्शेन्द्रिय; स्पर्श की अवधारणा या अनुभूति।
3. चक्षु– आँखें; दृगेन्द्रिय; रूप की अवधारणा।
4. जिह्वा– जीभ; स्वादेन्द्रिय; स्वाद की अनुभूति।
5. घ्राण– नाक; घ्राणेन्द्रिय; गंध की अवधारणा।

कर्मेन्द्रियाँ

1. वाक्–आवाज़; वाचेन्द्रिय।
2. पाणि–हाथ; हस्तेन्द्रिय।
3. पद–पैर; पदेन्द्रिय।
4. उपस्थ–जनन अंग; जननेन्द्रिय।
5. पायु–गुदा; गुदेन्द्रिय।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में हम विकास एवं निवर्तन की प्रक्रिया की पुनः सृष्टि करते हैं। इसमें प्रत्येक तत्त्व को पृथक्-पृथक् अनुभव करते हैं, किन्तु एक जटिल समग्र के अंग के रूप में। हम तत्त्वों की अन्तर्निर्भरता और चेतना एवं ऊर्जा की अन्तर्क्रिया में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझने लगते हैं। इस प्रकार पचीस तत्त्व परिष्कृत हो जाते हैं।

7

अन्त:करण

अन्त:करण संस्कृत के दो शब्दों के मेल से बना है। अन्त:, अर्थात् आन्तरिक और करण, अर्थात् उपकरण। इस प्रकार अन्त:करण मनुष्य का एक आन्तरिक उपकरण है। इसके चार तत्त्व या शक्तियाँ हैं–बुद्धि, अहंकार, मनस् और चित्त। तंत्र एवं योग के अनुसार ये चार तत्त्व ऐसे माध्यम हैं जिनके माध्यम से चेतना कार्य करती है।

अन्त:करण होने के कारण ही मनुष्य वनस्पति, प्राणी और खनिज जगत् से भिन्न है। जीवन के इन निम्नतर स्वरूपों में अन्त:करण सुप्त एवं तामसिक बीज की अवस्था में रहता है। प्रकृति की ये रचनाएँ बुद्धि, विवेक, विचार या अहं के स्तर से नहीं, बल्कि शुद्ध सहज वृत्ति के स्तर से कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, कुत्ता सहज रूप से सब्जी की अपेक्षा मांस खाना पसन्द करेगा। वह चेतन रूप से उनमें अन्तर नहीं करता है; यह उसकी सहज वृत्ति है जो उसके शरीर का नियन्त्रण करती है।

मनुष्य में यह क्षमता वर्तमान स्थिति में धीरे-धीरे विकास करती हुई पहुँची है। मनुष्य जीवन के सभी रूपों के बीच से विजयी होकर ऊपर आ गया है और यह उसकी इस आन्तरिक शक्ति के कारण हुआ है जिसने उसे विवेक की, विचार करने, योजना बनाने, स्मरण रखने और कार्य करने की क्षमता प्रदान की है।

हालाँकि, मनुष्य का बौद्धिक वर्चस्व उसके अन्त:करण की पूर्ण क्षमता के लिए किसी भी प्रकार अनुपूरक के रूप में सहायता नहीं करता है। इसमें केवल उस शक्ति की झलक मिलती है जो इसके अन्दर है। यदि यह उपकरण अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर ले, तो मनुष्य न केवल प्रकृति की निम्नतर

रचनाओं को, बल्कि स्वयं अपने अन्दर छुपी हुई शक्तियों को भी नियन्त्रित कर पायेगा जिनमें सृजन, पालन एवं नाश करने की अन्तर्जात क्षमता है। इस प्रकार वह प्रकृति का एक सह-स्रष्टा या एक ऐसा उपकरण बन जायेगा जो उसकी ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करेगा। वे योगी जिन्होंने ऐसा करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, उन्होंने अपने आन्तरिक उपकरण, अन्तःकरण के रहस्यों को ढूँढकर उन पर विजय पायी है।

मानव चेतना अन्तःकरण के माध्यम से कार्य करती हुई अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के अनुभवों से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करती है, उन्हें वर्गीकृत करती है, उनका अनुमान लगाती है, उन्हें अनुभव करती है और उनका बोध करती है। आप जो भी अनुभव करते हैं, देखते, करते या बोलते हैं, वह सब वहाँ संचित होता है। अन्तःकरण का एक भाग ऐसा है जिसे न केवल इस जीवन और इससे सम्बन्धित अनुभवों का ज्ञान होता है, बल्कि सम्पूर्ण अन्तरिक्ष एवं ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है।

यद्यपि सजगता की स्थूलता के कारण ज्ञान की पूरी क्षमता प्रभावहीन रह जाती है और प्रकट नहीं हो पाती है। यह तब तक इसी स्थिति में रहेगी जब तक व्यक्ति अपने अन्तःकरण का परिष्करण प्रारम्भ नहीं करेगा। अन्तःकरण के परिष्करण से तात्पर्य यह है कि इसे शुद्ध ऊर्जा एवं चेतना की उच्चतम आवृत्ति के समरूप करना होगा ताकि हम इस बात के प्रति सजग हो जायें कि वास्तव में हम जिसे परिष्कृत कर रहे हैं वह उसी ऊर्जा एवं चेतना का सृजन है।

आज मानव शरीर का पूर्ण विकास हो चुका है। वह नाटा या लम्बा, मोटा या पतला हो सकता है, लेकिन क्रमविकास की अगली अवस्था का सम्बन्ध चेतना के क्षेत्र से है। श्रीअरविन्द ने 'उच्च मानव जाति' की बात कही है, यह तब होगा जब मनुष्य उच्च मन की अवस्था को प्राप्त कर लेगा। 'उच्च मानव जाति' से अभिप्राय यह है कि मनुष्य का मानसिक, भावनात्मक, विवेक और सबसे ऊपर, आध्यात्मिक विकास अपनी पराकाष्ठा पर होगा। वर्तमान में ये क्षमताएँ अपनी कठिन प्रारम्भिक अवस्था में हैं और हम अभी भी उनकी जटिलताओं से संघर्ष कर रहे हैं। इस क्षेत्र में हमारी सफलता अपने अन्तःकरण के शुद्धिकरण, उसे प्रदीप्त करने और उसके कार्यों को एकीकृत करने की हमारी कुशलता पर निर्भर करती है।

अन्तःकरण एक अत्यन्त सूक्ष्म ट्रान्समीटर (संचारी उपकरण) के समान कार्य करता है जो प्रभावों को ग्रहण करता है और उनका संचरण करता है।

आपके उपकरण के परिष्करण पर ही उसके कार्य की स्पष्टता एवं सूक्ष्मता निर्भर करेगी। यदि यह स्थूल स्पन्दनों के साथ अनुकूलित है तो ट्रान्समीटर उसे ही परावर्तित करेगा। यदि यह सूक्ष्मतम ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से अनुकूलित हो जाता है तो आप न केवल अपने अस्तित्व के पीछे छिपे रहस्यों को ढूँढ निकालेंगे, बल्कि उन पहेलियों को भी सुलझा लेंगे जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बिखरी हुई हैं।

मनुष्य कार्य और कारण के बीच झूलता हुआ कोई अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि वह तो ब्रह्माण्डीय योजना का एक अभिन्न अंग है, जिसकी प्रत्येक कण के सृजन में एक विशेष भूमिका होती है। अन्त:करण इस भूमिका को समझने के हमारे प्रयास में महत्त्वपूर्ण ढंग से हमारी मदद करता है।

इस सूक्ष्मतम उपकरण को हमने एक के बाद दूसरे अनेक जन्मों की यात्रा के दौरान सूक्ष्म बिम्ब विधान के द्वारा स्वयं तैयार किया है। इस प्रकार अन्त:करण संस्कारों को संचित रखता है, जिन्हें हम एक जन्म से दूसरे जन्म में साथ लिए जाते हैं। एक वाद्ययंत्र के समान यह इतना संवेदनशील होता है कि सूक्ष्मतम स्पन्दनों को भी ग्रहण कर लेता है, और हमारे चेतन ज्ञान के होते हुए भी यह ऐसा करता है। आप अपने अन्दर बन रहे कुछ विशेष संस्कारों के प्रति चेतन रूप से सजग नहीं भी हो सकते हैं, किन्तु आपका अन्त:करण हमेशा चौकन्ना रहता है।

यह आपका अन्त:करण है जो आपके पूर्व अनुभव या ज्ञान के आधार पर आपके कार्य की दिशा का निर्णय लेता है। वहाँ पर जो विवरण अंकित होता है वह ऐसा अंश है जो तब तक स्वयं आपके सम्मुख प्रकट नहीं हो सकता है जब तक ब्रह्माण्डीय सजगता और आन्तरिक आँखें एवं कान प्राप्त नहीं हो जाते, जो ब्रह्माण्डीय ध्वनि और दृश्य के सूक्ष्म स्पन्दनों को समझ पाते हैं। इसलिए हमें केवल यह नहीं ढूँढ निकालना है कि अन्त:करण में क्या संचित है, बल्कि यह भी सीखना है कि उसे किस प्रकार नियन्त्रित करना है। तंत्र वह एकमात्र विद्या है जिसने हमें इसका उत्तर दिया है।

अन्त:करण वह उपकरण है जिसके द्वारा चेतना अपना ब्रह्माण्डीय खेल खेल रही है, जिसे हम उसकी लीला कह सकते हैं। चेतना सब में एक समान होती है–शुद्ध, उद्भासित और प्रदीप्त। यह स्वयं को किस प्रकार अभिव्यक्त करती है, यह इस पर निर्भर करेगा कि इसने अपनी लीला के लिए जिस माध्यम का प्रयोग किया है वह कितना सूक्ष्म, स्पष्ट

और प्रखर है। दो भिन्न लोगों में समान प्रेरणा, समान विचार और समान क्रिया हो सकती है, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कार्यशैली और अन्तिम परिणाम पूर्णत: उन दोनों व्यक्तियों के मानसिक स्तर, बुद्धि और अहंकार पर निर्भर करेंगे।

मन के आयाम

योग में मन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है– जागृति (चेतन), स्वप्न (अवचेतन), सुषुप्ति (अचेतन) एवं तुरीय (इन्द्रियातीत)। इस प्रकार योग चार स्तरों वाले मन की बात करता है जब कि आधुनिक मनोविज्ञान ने सजगता को तीन स्तरों में ही सीमित कर दिया है– चेतन, अवचेतन एवं अचेतन।

अन्त:करण चेतन, अवचेतन एवं अचेतन क्षेत्रों के माध्यम से कार्य करता हुआ स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक अनुभवों को उत्पन्न करता है। चूँकि अन्त:करण का विकास सत्त्व, रजस् एवं तमस्, इन तीन गुणों के मिश्रण से हुआ है, इसलिए वहाँ होने वाले अनुभव मुख्यत: इन तीन ब्रह्माण्डीय तत्त्वों के व्यापक प्रभाव पर निर्भर करेंगे। मनस्, चित्त, बुद्धि और अहंकार का व्यवहार सत्त्व के प्रभाव में रजस् एवं तमस् से भिन्न होता है और इस प्रकार वे सजगता की तीन अवस्थाओं में भिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं।

मनस् एवं चित्त चेतन एवं अवचेतन सजगता के अंग हैं और जागृति एवं स्वप्न अवस्थाओं की क्रियाओं तथा विचारों को नियन्त्रित करते हैं। बुद्धि एवं अहंकार जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं के परिष्करण की विभिन्न श्रेणियों में उपस्थित रहते हैं। हालाँकि, चूँकि ये सभी तत्त्व एक दूसरे से ही विकसित हुए हैं और शक्ति के उसी तत्त्व की रचना करते हैं, उनकी परस्पर निर्भरता और उनका एक दूसरे पर हावी होना अपरिहार्य है।

यह स्पष्ट है कि सजगता की इन तीनों अवस्थाओं में अन्त:करण तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है, जिस क्षण जिस गुण की प्रधानता रहती है उस क्षण वह स्वयं को उसी के अनुरूप परिवर्तित कर लेता है। किन्तु चौथी अवस्था, अर्थात् तुरीयावस्था में गुण किसी भी प्रकार का प्रभाव डालना बन्द कर देते हैं, और इस प्रकार, सजगता पिछली तीन अवस्थाओं में अन्त:करण में हो रही अस्थिरता से परे निकल जाती है। यह साधना के द्वारा अन्त:करण की क्षमता के पूर्ण विकास से ही प्राप्त हो पाता है।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में अन्त:करण की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। साधक को इस शक्तिशाली उपकरण की क्रियाओं एवं इसकी पूरी क्षमता को आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए निर्दिष्ट करने की विधि का बोध हो जाता है।

बुद्धि

बुद्धि को महत् तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि यह शुद्ध चेतना की निकटतम कार्यशक्ति है। जब बुद्धि को ऐन्द्रिक सुखों या विलासिता की ओर मोड़ दिया जाता है तो यह आत्मा को बन्धनयुक्त कर देती है, किन्तु जब इसे विरक्तिसम्पन्न कर दिया जाता है तो आत्मा मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाती है। दैनिक जीवन में बुद्धि ही आपको आपके धर्म (कर्त्तव्य, व्यवसाय) के अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती है। बुद्धि के कारण ही किसी भी कार्य का मूल्यांकन परिशुद्धता एवं यथार्थता के साथ किया जाता है।

उच्चतर स्तर पर बुद्धि स्वयं को प्रज्ञा एवं वैराग्य के रूप में प्रकट करती है। यद्यपि ये उदात्त गुण बुद्धि में अन्तर्निष्ठ होते हैं, किन्तु माया के प्रभाव से और अहंकार, इन्द्रियों एवं तीन गुणों के सम्पर्क के कारण इन गुणों में बदलाव आ जाता है।

बुद्धिमानी, वैराग्य, विवेचन या तर्कणा, सहनशीलता, शान्ति, आत्मनिग्रह, विवेक एवं चिन्तन-मनन सात्त्विक बुद्धि की विशेषताएँ हैं। सात्त्विक अवस्था में बुद्धि विचलनमुक्त हो जाती है और एक साक्षी की भूमिका ग्रहण कर लेती है। रजस् के प्रभाव से दोष उत्पन्न होने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप बुद्धि अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पाती है, और त्रुटिपूर्ण जानकारियों एवं अविद्या या अज्ञान के द्वारा निर्णय प्राय: दूषित और भ्रामक हो जाते हैं। तामसिक बुद्धि अहंकार के प्रभाव में आ जाती है और भ्रान्तिजनक जानकारियों और गलत निर्णयों का आवरण इस पर पड़ जाता है।

तत्त्वशुद्धि के अभ्यास में हम बुद्धि की सात्त्विक प्रकृति पर ध्यान करते हैं ताकि तामसिक एवं राजसिक प्रवृत्तियाँ, जो इसकी वास्तविक प्रकृति नहीं हैं और जो सात्त्विक बुद्धि को कार्य करने से रोकती हैं, दूर हो जाती हैं। इस प्रकार, मूक साक्षी होने की अनुभूति को बल मिलता है।

अहंकार

अहम् का अर्थ है 'मैं', और 'मैं' के होने का भाव अहंकार है। अहंकार के जन्म के साथ ही एक सत्ता का अस्तित्व प्रकट होता है और हर स्तर पर एकीकरण टुकड़े-टुकड़े हो जाता है तथा व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण सृष्टि से अलग देखने लगता है। अहंकार के अन्दर वैयक्तिकता का बीज छुपा होता है जिससे अपनी पहचान बनाने की तथा वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति आसक्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अहंकार आपके रोम-रोम में प्रवेश कर जाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से प्रकट होता है और यह जो जाल बुनता है उसके बन्धन में मनुष्य अनेक जन्मों तक बँधा रह जाता है।

अहंकार व्यक्ति के अस्तित्व का नाभिक या केन्द्र बन जाता है। केवल अहंकार के कारण ही आप अपने आस-पास की वस्तुओं से सम्बद्ध हो पाते हैं। यदि आप में अहंकार नहीं होता तो आप भी किसी पौधे या सब्ज़ी की भाँति होते और आपको भी अपने अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं होता। यह सृष्टि का विरोधाभास है कि एक ओर अहंकार आपको वस्तुनिष्ठ अनुभवों से बाँधता है और दूसरी ओर यह ऐसा नाभिक है जिसका विस्फोट कर एकीकृत सत्ता को जाग्रत किया जाता है।

जागृति या चेतन अवस्था में अहंकार स्थूल शरीर, अर्थात् इन्द्रियों एवं विचारशील मन के माध्यम से कार्य करता है। अवचेतन अवस्था या स्वप्न में अहंकार सूक्ष्म शरीर और स्वप्न के माध्यम से कार्य करता है। जब आप गहरी निद्रा, सुषुप्ति में होते हैं तब यह बीज के रूप में कारणात्मक शरीर में निष्क्रिय हो जाता है, किन्तु ध्यान में यह आन्तरिक सजगता का रूप ग्रहण कर लेता है। अहंकार इतनी गहराई में जड़ जमाये हुए रहता है कि यह सविकल्प समाधि की अवस्थाओं में भी पहुँच जाता है।

अहंकार की क्रियायें सत्त्व, रजस् एवं तमस् के द्वारा प्रभावित होती हैं। सात्त्विक अहंकार 'अहम्' की अवधारणा के लिए उत्तरदायी होता है और यह आत्मानुभूति की प्रक्रिया में प्रेरक का कार्य करता है। अहंकार अवचेतन मन में संस्कारों को उत्तेजित करता है, किन्तु यह सत्त्व या सन्तुलन के प्रभाव के कारण अस्थायी रूप से इस क्रिया को रोक देता है।

राजसिक अहंकार एक क्रियात्मक शक्ति है जो व्यक्ति में 'अहम्' को जगाती है जिससे अत्यधिक क्रियाशीलता और व्यग्रता उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणामत: विचारों और क्रियाओं का अपव्यय और क्षय होता है।

तामसिक अहंकार दुःखदायी और नकारात्मक संस्कारों को बढ़ा देता है जिससे सन्देह, आशंका, भय और कार्य को विलम्ब से करने या टालने की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

अहंकार को जीवात्मा के लिए बन्धन और मुक्ति, दोनों का स्रोत माना जा सकता है। यद्यपि यह व्यक्ति की जीवन यात्रा में उसके साथ लम्बे समय तक बना रहता है, किन्तु साधना के द्वारा व्यक्ति धीरे-धीरे इसके नकारात्मक तत्त्वों को परिष्कृत कर सकता है। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के द्वारा हम अहंकार की सूक्ष्म प्रकृति के प्रति अधिक सजग हो जाते हैं, जिससे स्वयं को इसकी निम्नतर क्रियाओं से दूर कर पाना सरल हो जाता है।

मनस् एवं चित्त

मनस् एवं चित्त बाह्य मन और मानस-द्रव्य के प्रतीक हैं, अर्थात् वह तत्त्व जो जागृति और स्वप्न की अवस्थाओं में प्रत्यक्ष रहता है। चित्त वह स्थान है जहाँ संस्कार, आद्यरूप एवं स्मृतियाँ अनुभूतियों के रूप में स्थित होती हैं। मनस् या विचार/प्रतिविचार उनके वाहन हैं या उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम। मनस् एवं चित्त स्वयं कार्य नहीं करते हैं। वे बुद्धि के तर्कपूर्ण विचारों और अहंकार की आग्रही प्रवृत्ति द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

मनस् की यह अन्तर्भूत विशेषता है कि यह रजोगुण के नियन्त्रण में रहता है। यह हमेशा उद्विग्न और विचलित रहता है। जिस प्रकार एक बच्चा एक खिलौने को उठाता है, लेकिन तुरंत उसे रखकर दूसरा उठा लेता है, ठीक उसी प्रकार मनस् की यह प्रवृत्ति होती है कि यह एक विचार से उछल कर दूसरे विचार पर चला जाता है।

यह राजसिक प्रवृत्ति तब परिवर्तित हो जाती है जब मनस् अहंकार के प्रभाव से तामसिक अवस्था में आ जाता है, और बुद्धि के प्रभाव से सत्त्व या सन्तुलन की अवस्था में आने पर रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार, अहंकार एवं बुद्धि मनस् के द्वारा चित्त में संचित संस्कारों का उपयोग करते हुए सुख या दुःख, क्लेश या आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

मनस् की क्रियाओं में तीन गुणों के प्रभाव से निरन्तर परिवर्तन आता रहता है। सात्त्विक अवस्था में मनस् स्थिर, एकाग्र और केन्द्रित हो जाता है। राजसिक प्रभाव से मनस् इन्द्रियों को उत्तेजित और बुद्धि को भ्रमित कर देता है। तामसिक मनस् बुद्धि और इन्द्रियों को आलसी और निष्क्रिय बना देता है।

चित्त को कभी-कभी उच्चतर मन भी कहा जाता है, लेकिन यहाँ केवल स्मृति के रूप में इसके कार्य से हमारा सम्बन्ध है। सत्त्व के प्रभाव से चित्त में संचित संस्कार निष्प्रभावी हो जाते हैं ताकि चेतना शान्त और अविक्षुब्ध रहे। रजोगुण के प्रभाव से राजसिक संस्कार विकल्प (कल्पना) एवं विपर्यय (दोषपूर्ण ज्ञान) के रूप में जाग उठते हैं। इस अवस्था में चित्त ज्ञान एवं अज्ञान, आसक्ति एवं अनासक्ति, दोनों प्रकार के संस्कारों को धारण करता है।

जब तमस् चित्त को प्रभावित करता है तब अवांछित संस्कार जाग उठते हैं। इस प्रकार, व्यक्ति वासनाओं के नियन्त्रण में आ जाता है और सभी अच्छे संस्कार विस्मृत हो जाते हैं। केवल मनन-चिन्तन, धारणा एवं ध्यान की प्रक्रिया के द्वारा अवांछित संस्कारों को समाप्त किया जा सकता है। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास की पूर्णता साधक को एकाग्रता एवं ध्यान की ओर ले जाती है जिससे सजगता मुक्त होकर तत्त्वों की प्रकृति को प्रकाशित करती है।

हमें यह समझना चाहिए कि आत्मानुभूति प्राप्त करने का मुख्य मार्ग अन्त:करण में ही अन्तर्निहित है। अपने विकास की दिशा को पूरी तरह अपने नियन्त्रण में रखने के लिए हमें तांत्रिक एवं यौगिक साधना का सहारा लेना होगा। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में हम अन्त:करण की छिपी हुई शक्ति का उपयोग कर सजगता को स्थूल अनुभवों से दूर ले जाते हुए उच्चतर अनुभूतियों की ओर जाने के लिए निर्दिष्ट करते हैं।

8

पंच तत्त्व

तंत्र यह मानता है कि सभी पदार्थों की रचना पाँच तत्त्वों या भूतों के मिश्रण से हुई है। शिव स्वरोदय में यह व्याख्या की गयी है, "तत्त्वों के कारण सृष्टि हुई है और वे ही इसका पोषण करते हैं।"

तंत्रराज तंत्र में शक्ति शिव से पूछती हैं, "सभी तत्त्व कहाँ स्थित होते हैं, शरीर के अन्दर या बाहर?" शिव उत्तर देते हैं कि तत्त्व सम्पूर्ण शरीर एवं मन में व्याप्त होते हैं। आप जो भी करते और सोचते हैं वह इन तत्त्वों के प्रभाव से ही होता है। इसलिए योग में यह जानना आवश्यक है कि तत्त्व किस प्रकार व्यवहार करते हैं और किस प्रकार उन्हें नियन्त्रित करके उनका उपयोग किया जा सकता है।

पाँच तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, अपस् (जल) एवं पृथ्वी के रूप में जाने जाते हैं। हालाँकि इन्हें भौतिक या रासायनिक तत्त्व समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। पृथ्वी वह नहीं है जिसे हम अपने चारों ओर देखते हैं। जल वह नहीं है जिसे हम पीते हैं या जिससे हम स्नान करते हैं। अग्नि वह नहीं जिसे हम गर्म रहने के लिए या अन्य कार्य के लिए प्रज्वलित करते हैं, बल्कि उन्हें प्रकाश एवं ध्वनि तरंगों का परिणाम मानना चाहिए जो विभिन्न ऊर्जा या प्राणिक स्पन्दनों से उत्पन्न होते हैं।

ज्योतिष विज्ञान ने हमारे व्यक्तित्व, मन, भावनाओं और नियति पर प्रथम चार तत्त्वों, पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु के महत्त्वपूर्ण प्रभाव को प्रमाणित किया है, किन्तु वह सूक्ष्मतम और महत्त्वपूर्ण तत्त्व, अर्थात् आकाश, जिसका सम्बन्ध आध्यात्मिक अनुभूतियों से होता है, को सम्मिलित करने में असफल रहा है। हालाँकि तंत्र एवं योग विज्ञान ने तत्त्वों का व्यापक परीक्षण किया है

और स्पष्ट रूप से कहा है कि मनुष्य की रचना इन पंच तत्त्वों से हुई है और उस पर निरन्तर उनका प्रभाव कायम रहता है।

तंत्र शास्त्रों ने तत्त्वों के एक पूर्ण विज्ञान के विषय में बताया है जिसके अनुसार साधक न केवल भविष्य की बातें बता सकता है, बल्कि पूरे दिन की अपनी क्रियाओं से प्राप्त होने वाले परिणामों को भी नियन्त्रित कर सकता है। हम जिस ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, उसका उद्देश्य निश्चित रूप से यह नहीं होना चाहिए। इससे केवल यह संकेत मिलता है कि हमारे सम्पूर्ण जीवन की रूपरेखा और तत्त्वों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि तत्त्व ज्ञान के द्वारा अपनी नियति को परिवर्तित करना भी सम्भव है।

ये पंच तत्त्व मिलकर एक शृंखला बनाते हैं जिसमें एक तत्त्व से दूसरा प्रकट होता है। सबसे पहले विकसित होने वाले समरूप तत्त्व आकाश में असीमित मात्रा में स्थितिज ऊर्जा या अन्त:शक्ति समायी हुई होती है। इसलिए आकाश वह सूक्ष्म अवस्था है जब ऊर्जा और पदार्थ, दोनों चेतना के अन्दर अपनी प्रसुप्त और स्थितिज अवस्था में विद्यमान होते हैं।

जब आकाश के कणों में अन्तर्निष्ठ ऊर्जा कम्पन करने लगती है, तब गति उत्पन्न होती है और वायु तत्त्व वायु के रूप में उत्पन्न होता है। वायु के कण सबसे अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक गति करते हैं इसलिए वायु को सर्वव्यापी गति के रूप में देखा जाता है। वायु में ऊर्जा की अतिशय गति के कारण ऊष्मा उत्पन्न होती है जो अगले तत्त्व अग्नि को उत्पन्न करने का प्रेरक कारण बन जाती है।

अग्नि तत्त्व में ऊर्जा वायु तत्त्व की अपेक्षा कम गतिमान होती है। गति में कमी आने से अग्नि तत्त्व की विकिरणशील ऊष्मा तितर-बितर हो जाती है और इस प्रकार वह ठंढी होकर अपस् या जल तत्त्व का रूप ग्रहण कर लेती है। अपस् तत्त्व के जन्म के साथ ही वायु तत्त्व की गति की पूर्ण स्वतन्त्रता और अग्नि तत्त्व की गति की आंशिक स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, और इन तत्त्वों के कण एक विशेष क्षेत्र में बँध जाते हैं, उनकी गति केवल एक छोटी परिधि के अन्दर ही होती है।

अन्तिम तत्त्व, पृथ्वी का विकास ऊर्जा के कम्पन में और कमी आने से होता है जिससे अपस् पृथ्वी के रूप में संघनित हो जाता है। यहाँ अपस् के अन्दर ऊर्जा की गति की सीमित स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाती है। पृथ्वी के

प्रत्येक कण का अपना स्थान होता है और उसमें होने वाला कम्पन उसी स्थान में सीमित होकर रह जाता है।

पदार्थ की उत्पत्ति

पदार्थ की उत्पत्ति के लिए इन पाँच तत्त्वों में क्रमपरिवर्तन एवं सम्मिलन की प्रक्रिया होती है, जो प्रकृति की अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। प्रत्येक तत्त्व दो समान भागों में विभक्त हो जाता है। प्रत्येक तत्त्व का दूसरा आधा भाग पुन: चार भागों में (पूर्ण के 1/8 भाग में) बँट जाता है। इसके बाद पहला आधा भाग अन्य चार तत्त्वों के प्रत्येक एक बटा आठवें भाग के साथ सम्मिलित होकर पदार्थ की रचना करता है, उदाहरण के लिए, आकाश का आधा भाग अन्य चारों तत्त्वों के एक बटा आठवें भाग से मिश्रित हो जाता है और यही प्रक्रिया अन्य तत्त्वों के साथ होती है।

यह पंचगुणित होने की प्रक्रिया है और इसके बाद क्रमपरिवर्तन एवं सम्मिलन होता है। सूक्ष्म तत्त्वों के स्थूल पदार्थों में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को पंचीकरण कहा जाता है और यह भौतिक शरीर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए उत्तरदायी है। ऐसा कहा जाता है कि भौतिक शरीर में ये तत्त्व 5:4:3:2:1 के अनुपात में रहते हैं, जिनमें शरीर के अधिकांश भाग में पृथ्वी होती है, उसके बाद जल, अग्नि, वायु और आकाश होते हैं जिनकी मात्रा क्रमश: कम होती जाती है। ये मात्राएँ हमारी व्यक्तिगत शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताओं का निर्धारण करती हैं।

विभिन्न प्रकार के क्रमपरिवर्तन एवं सम्मिलन के भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। समझाने के लिए यह कहा जा सकता है कि यदि आप मनुष्य की रचना के लिए आवश्यक सामाग्रियों में से कुछ घटा दें या कुछ बढ़ा दें और क्रमपरिवर्तन एवं सम्मिलन की प्रक्रिया में कुछ अन्तर ले आयें तो उसके परिणामस्वरूप एक वानर, हाथी या बकरा, कोई भी जन्म ले सकता है। आज विद्यमान पदार्थों में सामग्रियों की मात्राओं के विषय में केवल प्रकृति को मालूम है और आज भी उसका यह रहस्य कायम है। यदि हम इसका रहस्योद्घाटन कर पाये, तो प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों के द्वारा पदार्थों की रचना और उनका विनाश करने में अधिक समय नहीं लगेगा।

इस पर विश्वास करना कठिन नहीं है। टेलीफ़ोटो या उपग्रह (सैटेलाइट) से संचार की प्रक्रिया भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। एक देश से दूसरे देश

में घटनाओं को प्रसारित करने के लिए चित्रों के रूप में नहीं, बल्कि ध्वनि और प्रकाश तरंगों के रूप में उनका संचार किया जाता है। बाद में उन तरंगों को पुन: संयोजित कर बिल्कुल वैसा ही चित्र पुन: उत्पन्न कर लिया जाता है जिसका संचार किया गया था। शीघ्र ही सजीव और निर्जीव वस्तुओं के साथ भी यह करना सम्भव हो जायेगा। उदाहरण के लिए, यदि आपको पृथ्वी से बृहस्पति (जो अनेक प्रकाश वर्ष दूर है) पर जाना होता, तो आपको सबसे पहले प्रकाश एवं ध्वनि तरंगों में परिवर्तित होना पड़ता, और उसके बाद अपने गन्तव्य पर पहुँचने पर आपको अपने स्वरूप में पुन:संघटित करना पड़ता। यह अत्यन्त विचित्र प्रतीत होता है, किन्तु यदि आप इस अवधारणा को समझ पायें तो आप यह आसानी से समझ पायेंगे कि आपके शरीर की रचना किससे हुई है और यह रूपाकार जो आप देखते हैं उसमें यह किस प्रकार संघनित हो गया है।

क्रमविकास की योजना में इन पाँच तत्त्वों का उद्भव तमस् से हुआ जो तन्मात्राओं पर छाया हुआ था। तन्मात्रा एक ऐसा सूक्ष्म गुण है जिसके माध्यम से तत्त्वों की अवधारणा होती है। इस प्रकार, आकाश का अनुभव शब्द (ध्वनि) तन्मात्रा से, वायु का स्पर्श तन्मात्रा से, अग्नि का रूप (दृष्टि) तन्मात्रा से, अपस् का रस (स्वाद) तन्मात्रा से और पृथ्वी का गंध तन्मात्रा से होता है।

ये तन्मात्राएँ जो इन्द्रियों की मूल तत्त्व हैं, इन्द्रियों से क्लिष्ट रूप में जुड़ी हुई हैं और उनके माध्यम से ये समझती हैं और क्रिया करती हैं। इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं: ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ स्वयं में पर्याप्त नहीं होती हैं, बल्कि मन के गुण संकल्प/विकल्प (वरण/अस्वीकरण) पर निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न किया गया संवेदन भी अहंकार पर निर्भर करता है क्योंकि वह व्यक्तिगत अनुभव के रूप में उनकी पहचान करता है, और बुद्धि सभी अनुभवों का बोध करती है।

इस प्रकार सभी तत्त्वों को पृथक अस्तित्व के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि उन्हें शुद्ध चेतना का विस्तार मानना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि क्रमविकास की अवधि में सूक्ष्म अवस्थाएँ स्थूल अवस्थाओं को जन्म देती हैं और प्रत्येक स्थूल अवस्था के कारण के रूप में एक तत्त्व होता है। इस प्रकार, कारण परिणाम का एक अनिवार्य अंग होता है।

आकाश तत्त्व, जो आकाश तन्मात्रा से विकसित होता है, उसमें अन्य चार तत्त्वों की विशेषताएँ नहीं होती हैं क्योंकि वे उससे अधिक स्थूल

होती हैं। आकाश से वायु का विकास होता है जो आकाश एवं वायु, दोनों तन्मात्राओं से बना हुआ होता है। वायु से अग्नि तत्त्व उत्पन्न होता है जिसमें आकाश, वायु एवं अग्नि तन्मात्राएँ होती हैं। आगे चलकर अग्नि से अपस् (जल) विकसित होता है जिसमें आकाश, वायु, अग्नि एवं अपस् तन्मात्राएँ होती हैं। अन्तिम तत्त्व पृथ्वी में पाँचो तत्त्वों की विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं।

इस प्रकार यह पाया जाता है कि तत्त्वों के गुण परस्पर मिश्रित होते हैं, और यद्यपि प्रत्येक तत्त्व का एक प्रधान गुण होता है, फिर भी उसमें उन तत्त्वों के गुण भी विद्यमान रहते हैं जिनसे उसका उद्भव हुआ है। आकाश में ध्वनि का गुण होता है; वायु में ध्वनि और स्पर्श, दोनों का गुण होता है, हालाँकि स्पर्श का गुण प्रधान है। अग्नि का प्रधान गुण रूप है, जबकि उसमें ध्वनि और स्पर्श के अंश भी हैं। जल में स्वाद की प्रधानता होती है, किन्तु उसमें ध्वनि, स्पर्श और रूप की भी विशेषताएँ हैं। यद्यपि पृथ्वी का प्रधान गुण गंध है, फिर भी उसमें ध्वनि, स्पर्श, रूप और स्वाद भी विद्यमान है। इसलिए यह कहना आसान है कि इन्द्रियानुभूति के व्यापक क्षेत्र के कारण स्थूलतम तत्त्व के रूप में पृथ्वी को और आकाश, जिसका केवल एक ही माध्यम है ध्वनि, उसको सूक्ष्मतम तत्त्व के रूप में पहचाना जा सकता है।

ये पाँच तत्त्व जो आपके शरीर के सम्पूर्ण पदार्थ की रचना करते हैं, उन्होंने आपकी माता के गर्भ में अपना स्थूलतम रूप ग्रहण किया था। उनकी स्थूलता को बिल्कुल उस प्रकार परिष्कृत करना होगा, जिस प्रकार पेट्रोलियम को पेट्रोल के रूप में परिष्कृत किया जाता है। तत्त्व शुद्धि का उद्देश्य इस परिष्करण में मदद करना है ताकि तत्त्वों की स्थूलता सूक्ष्म तत्त्वों की अनुभूतियों में रूपान्तरित हो सके। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक जीवन के सूक्ष्मतम स्वरूप को अणुवीक्षण यंत्र से देख पाता है, ठीक उसी प्रकार तत्त्व शुद्धि में साधक को उस जगत में ले जाया जाता है जहाँ पदार्थ को उसके सघन रूप में नहीं, बल्कि चेतना के रूप में देखा जाता है।

पतंजलि के योग सूत्र में यह कहा गया है कि प्रत्येक तत्त्व की पाँच विशेषताएँ होती हैं, और तत्त्वों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए साधक को उन विशेषताओं पर संयम का अभ्यास (एकाग्रता, ध्यान, समाधि का स्वाभाविक मिश्रण) करना होता है। पतंजलि ने इस प्रक्रिया को भूत जय (तत्त्वों पर विजय) की संज्ञा दी है।

पाँच तत्त्वों की विशेषताएँ

	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
प्रकृति	भारी	ठंढा	गर्म	अस्थिर	मिश्रित
गुण	भार : सम्बद्धता	तरलता : संकुचन	ऊष्मा : प्रसार	गति : संचलन	विसृत : स्थान देना
रंग	पीला	श्वेत	लाल	नीला-भूरा	काला
आकार	चौकोर	अर्द्ध चन्द्र	त्रिकोण	षड्भुजाकार	बिन्दु
चक्र	मूलाधार	स्वाधिष्ठान	मणिपुर	अनाहत	विशुद्धि
मंत्र	लं	वं	रं	यं	हं
तन्मात्रा	गंध	रस	दृष्टि	स्पर्श	ध्वनि
शरीर में क्रियायें	त्वचा-रक्त वाहिनियाँ, अस्थि की रचना	सम्पूर्ण शारीरिक द्रव	भूख, प्यास, नींद	मांसपेशियों का प्रसार, संकुचन	भावनाएँ : मनोभाव
कमेन्द्रिय	गुदा	जननांग	पैर	हाथ	स्वर तंत्री
ज्ञानेन्द्रिय	नाक	जीभ	आँखें	त्वचा	कान
स्थान*	अंगुलियों से घुटनों तक	घुटनों से नाभि तक	नाभि से हृदय तक	हृदय से भ्रूमध्य तक	भ्रूमध्य से सिर के शिखर तक
मानसिक अवस्था	अहंकार	बुद्धि	मनस्	चित्त	प्रज्ञा
कोष	अन्नमय	प्राणमय	मनोमय	विज्ञानमय	आनन्दमय
प्राण वायु	अपान	प्राण	समान	उदान	व्यान
लोक	भू	भुव:	स्व:	मह:	जन:
दिशा	पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर	मध्य एवं ऊपर

इन पाँच तत्त्वों की पहली विशेषता है उनका स्थूल रूप जिसका सम्बन्ध इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाली अनुभूतियों– ध्वनि, स्पर्श, रूप, रस (स्वाद) और गंध से होता है। दूसरी विशेषता है तत्त्वों का गुण। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की सघनता, जल की तरलता, अग्नि की ऊष्मा, वायु की गति एवं कम्पन और आकाश की रिक्तता एवं उसका विस्तार। तीसरा सूक्ष्म पक्ष है, जो तन्मात्राओं की सूक्ष्मताओं से सम्बन्धित है। जिस प्रकार इन्द्रियानुभूति का स्थूल क्षेत्र है, उसी प्रकार एक ऐसी सूक्ष्म अवस्था है जिसमें तत्त्वों की अनुभूति सूक्ष्म ध्वनि, सूक्ष्म स्पर्श, सूक्ष्म रूप, सूक्ष्म रस और सूक्ष्म गंध के रूप में होती है। इन सूक्ष्म स्वरूपों को प्राय: आत्मिक दर्शन कहा जाता है और ये इन्द्रियानुभूति की अतिसंवेदनशील अवस्थाएँ हैं।

तत्त्वों का चौथा पक्ष तीन गुणों– सत्त्व, रजस् एवं तमस् से सम्बन्धित है। ये तीन गुण प्रकाश, क्रिया और जड़ता के प्रतीक हैं तथा पाँच तत्त्वों के अभिन्न अंग हैं। इस प्रकार आकाश के अतिरिक्त वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी भी अपनी सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक अवस्थाओं में शरीर में उपस्थित होते हैं। आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए साधक को तत्त्वों की राजसिक एवं तामसिक अवस्थाओं को वश में करना होगा और उन्हें सत्त्व के प्रकाश में रूपान्तरित करना होगा। तत्त्व शुद्धि का अभ्यास इस रूपान्तर के योग्य बनाता है।

तत्त्वों का पाँचवाँ पक्ष अर्थतत्त्व के नाम से जाना जाता है जो उनके उद्‌देश्य को सूचित करता है। शास्त्र एक मत से यह मानते हैं कि यह आनन्द प्राप्त करने और पदार्थ से चेतना के मुक्त होने के लिए है, जिसके लिए तत्त्वों को उत्पन्न किया गया है।

इन पाँच तत्त्वों की अन्य ज्ञात विशेषताएँ हैं शब्द, वर्ण एवं रूप, जो तत्त्वों के अन्दर ऊर्जा की गति से उत्पन्न हुई हैं। तत्त्वों के विभिन्न वर्ण प्रत्येक तत्त्व में ऊर्जा की आवृत्ति के कम्पन को सूचित करते हैं। चूँकि आकाश तत्त्व में कोई कम्पन नहीं होता है इसलिए उसका वर्ण काला है। वायु नीले प्रकाश की आवृत्ति पर, अग्नि लाल प्रकाश की, अपस् श्वेत प्रकाश की और पृथ्वी पीले प्रकाश की आवृत्ति पर कम्पन करती है।

ऊर्जा का एक अन्य प्रकट रूप ध्वनि है जो तत्त्वों के बीज मंत्रों के रूप में व्यक्त होती है। आकाश का बीज मंत्र हम् है; वायु का यम्; अग्नि का रम्; अपस् का वम् और पृथ्वी का लम् है। ध्वनि और प्रकाश मिलकर ऊर्जा को

रूप देते हैं, इसीलिए आकाश को वृत्ताकार रूप में देखा जाता है; वायु को षड्भुज; अग्नि को उलटे त्रिकोण; अपस् को अर्द्ध चन्द्र और पृथ्वी को पीले वर्ग के रूप में देखा जाता है।

साइमैटिक्स के हाल के अनुसन्धानों ने यह दर्शाया है कि प्रकाश, ध्वनि और रूप ऊर्जा के प्रकट होने की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। इसे प्रमाणित करने के लिए एक टोनोस्कोप (तारतामापक यंत्र) में एक मंत्र का सही उच्चारण किया गया, जिसे इसने मंत्र के दृश्यरूप में पुन: प्रकट किया। तत्त्व मंत्रों के सदृश रूप एवं रंग होते हैं, इसलिए ध्यान के आधार के रूप में एक के स्थान पर दूसरे का उपयोग किया जा सकता है।

मृत्यु के बाद क्या होता है

ये तत्त्व सामूहिक या सार्वभौमिक क्षेत्र के साथ-साथ वैयक्तिक क्षेत्र में भी विद्यमान होते हैं। ब्रह्माण्डीय क्षेत्र वह है जहाँ निरन्तर सृजन होता रहता है और वैयक्तिक क्षेत्र वह है जिसमें तत्त्व पदार्थ से बँधे होते हैं। जब पदार्थ का क्षय या विघटन होता है तो ये वैयक्तिक तत्त्व ब्रह्माण्डीय क्षेत्र में लौट जाते हैं और क्रमश: अपने ब्रह्माण्डीय पूरकों में समा जाते हैं। मृत्यु के समय, वैयक्तिक तत्त्व जो शरीर और मन की रचना करते हैं अपने स्रोत में लौट जाते हैं। इस प्रकार, आकाश आकाश में लौट जाता है, वायु वायु में, अग्नि अग्नि में, अपस् अपस् में, पृथ्वी पृथ्वी में लौट जाती है और वे पदार्थ के अन्य रूपों में सृजित होने की प्रतीक्षा करते हैं।

अन्तत: तत्त्वों के विश्लेषण में इसका विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है कि ये तत्त्व केवल चेतना के आदेश पर अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। बिना चेतना के ये तत्त्व निश्चल और निष्क्रिय रहते हैं।

9

तत्त्वों का विवेचन

आकाश तत्त्व

आकाश शब्द का तात्पर्य है जो पदार्थ को अस्तित्व में आने के लिए स्थान प्रदान करे। स्थूल स्तर पर इसे दो वस्तुओं के बीच की दूरी के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। आकाश पंचतत्त्वों में सूक्ष्मतम है और सर्वव्यापी एवं अचल है।

आकाश तत्त्व का सम्बन्ध स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक ध्वनियों से है जिनका बोध श्रोत्र या कान के माध्यम से हो सकता है। हम जानते हैं कि ध्वनि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। शून्य में ध्वनि का संवहन नहीं होता है, इसलिए आकाश तत्त्व को ध्वनि का संवाहक कहा जाता है।

इस तत्त्व का कम्पन इतना सूक्ष्म होता है कि इसका बोध बाह्य इन्द्रियों से नहीं हो सकता है। हमारी इन्द्रियाँ उस आवृत्ति के लिए अनुकूलित नहीं हैं, इसलिए जब तक हम उनके द्वारा कार्य करते रहेंगे, तब तक हम आकाश के सूक्ष्म कम्पन का अनुभव नहीं कर पायेंगे। ऐसा कहा गया है कि आकाश प्रकाश की अपेक्षा अधिक शीघ्रगामी होता है; यह मानव ज्ञान के अनुसार तीव्रतम गति है।

प्रकाश एक बिन्दु से निकल कर एक विशेष दिशा में गमन करता है। एक स्रोत से निकला हुआ प्रकाश एक से अधिक दिशा में नहीं जा सकता है। आकाश में स्थान देने का गुण होता है और इसकी गति अनेक दिशाओं मे फैली हुई होती है। इसलिए जब मानसिक आवृत्ति ध्यान के द्वारा आकाश की आवृत्ति के साथ अनुकूलित होती है तब साधक समय के परे जा सकता है; समय का अतिक्रमण कर सकता है। उसके बाद वह अतीत, वर्तमान और भविष्य को देख सकता है।

आकाश तत्त्व निस्सीम है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, इसलिए इसका आकार वृत्ताकार शून्य के समान प्रतीत होता है। चूँकि शून्य प्रकाशरहित होता है, आकाश का वर्णन पारदर्शक या काले के रूप में किया गया है, जिसका कोई रंग नहीं है। काले रंग के अन्दर वर्णपट्टी के सभी रंग अन्तर्निहित होते हैं। इस प्रकार, तत्त्व शुद्धि में आकाश तत्त्व के यंत्र को काले रिक्त वृत्त के रूप में देखा जाता है जिसके अन्दर अनेक रंगो के बिन्दु होते हैं।

आकाश तत्त्व सामान्य रूप में कोई पदार्थ नहीं होता है। इसलिए किसी भौतिक साधन से आकाश का अनुभव कर पाना सम्भव नहीं होता है। यद्यपि तत्त्वज्ञानी, जो स्थूल मन से परे जा चुके हैं, उनके लिए आकाश तत्त्व के सत्त्व का अनुभव कर पाना सम्भव होता है। यही कारण है कि तंत्र ने इस तत्त्व की प्रकृति को मानसिक कहा है, भौतिक नहीं, और इसे बन्द आँखों के सामने चेतना के आकाश के रूप में चिदाकाश कहा है।

आकाश तत्त्व स्थान की धारणा उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है और मानव शरीर में यह विभिन्न अंगों के चारों ओर के स्थान को नियन्त्रित करता है। मनुष्य में मन के स्तर पर आकाश तत्त्व भावनाओं एवं मनोभावों को नियन्त्रित करता है। यह कहा जा सकता है कि जब आकाश तत्त्व की प्रधानता रहती है तब इन्द्रियग्राह्य अनुभव, जिनसे हम परिचित हैं, मन उनसे विमुख हो जाता है। हालाँकि ऐसा बहुत कम होता है क्योंकि आकाश का प्रवाह एक घंटे में पाँच मिनट के लिए होता है। इसे देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं कि अधिकांश लोग इन्द्रियग्राह्य अनुभवों के क्षेत्र में ही रहते हैं। केवल तत्त्वज्ञानी आकाश तत्त्व के प्रवाह को उत्पन्न कर उन अनुभवों से परे जा सकते हैं।

आध्यात्मिक प्रगति के लिए आकाश तत्त्व सर्वाधिक प्रभावकारी है। भौतिक उपलब्धि के प्रति आसक्ति के संदर्भ में इसे विनाशकारी तत्त्व कहा जा सकता है, किन्तु आध्यात्मिक प्रगति में यह अत्यधिक प्रभाव डालता है। इसलिए यह परामर्श दिया जाता है कि जब आकाश तत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तब एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

भौतिक रूप से आकाश सिर के शीर्ष पर स्थित होता है। मानसिक रूप से इसका सम्बन्ध अचेतन मन से है। इसकी आत्मिक स्थिति विशुद्धि चक्र में है। यह जिस आध्यात्मिक अनुभव का बोध कराता है, उसका सम्बन्ध जन लोक और आनन्दमय कोष, कारण शरीर एवं उसके परे के जगत् से होता है।

वायु तत्त्व

जब आकाश तत्त्व का अन्धकारपूर्ण शून्य गति के द्वारा अव्यवस्थित हो जाता है तब प्रकाश ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह शून्य के अन्धकार को कम कर देता है और भूरे-नीले रंग को उत्पन्न करता है जो वायु तत्त्व का विशेष रंग है। इस प्रकार तत्त्व शुद्धि में जिस वायु यंत्र का प्रयोग किया जाता है उसमें छः गैसीय बिन्दुओं से षड्भुज की आकृति बनती है।

वायु तत्त्व अपने सभी स्वरूपों में गतिज ऊर्जा के रूप में स्थित होता है, चाहे वह विद्युत् या रासायनिक ऊर्जा हो अथवा प्राणिक ऊर्जा। इस अर्थ में शरीर स्थित प्राण भी इसमें सम्मिलित है। वायु की अन्तर्निष्ठ विशेषता है संकुचन एवं प्रसार के द्वारा गति, और यह शरीर के अन्दर इन विशेषताओं को पाँच वायु–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान के माध्यम से नियन्त्रित करती है।

भौतिक शरीर में वायु तत्त्व स्पर्श की अनुभूति उत्पन्न करता है जिसे त्वचा के माध्यम से संवेदी तंत्रिकाओं के सहारे मस्तिष्क में उससे सम्बद्ध केन्द्र को सूचित किया जाता है। स्पर्श की अनुभूति वायु तत्त्व की सबसे सामान्य क्रिया है। यद्यपि, यदि इस अनुभूति को विकसित कर अतिसंवेदनशील बना दिया जाये तो हम अधिक उच्च आवृत्ति, जैसे अन्दर और बाहर शुद्ध ऊर्जा की गति की अनुभूति के अनुरूप प्रतिक्रिया कर सकेंगे।

वायु तत्त्व जिससे उत्पन्न हुआ है, अर्थात् आकाश तत्त्व के समान ही भौतिक अर्थ में अदृश्य है। इस सूक्ष्म स्तर पर पदार्थ अपने समरूप स्वरूप में ही रहता है। इसे गतिमान ऊर्जा के रूप में वर्णित किया जा सकता है। निरन्तर गति परिवर्तन लाती है और, इसलिए वायु तत्त्व के प्रभाव से मनुष्य और वातावरण में अस्थिरता एवं चंचलता आ जाती है।

अपने अस्थिरतापूर्ण प्रभाव के कारण वायु तत्त्व भौतिक उपलब्धि के लिए हानिकारक भी हो सकता है। हालाँकि यह साहित्यिक उद्देश्यों के लिए लाभप्रद होता है क्योंकि वायु तत्त्व का प्रवाह विचार प्रक्रिया को प्रभावित करता है जिसका सम्बन्ध आकस्मिक 'मस्तिष्क तरंगों' से होता है। उदाहरण के लिए, यदि आप वायु तत्त्व के प्रवाह के समय एक पुस्तक लिखें तो वह सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक होगी।

शरीर में वायु तत्त्व हृदय और भ्रूमध्य के बीच के क्षेत्र में स्थित होता है। मानसिक रूप से यह अवचेतन मन से सम्बद्ध होता है। आत्मिक शरीर में

इसकी स्थिति अनाहत चक्र में होती है। इस तत्त्व से सम्बद्ध आध्यात्मिक अनुभूति का सम्बन्ध महः लोक और विज्ञानमय कोश से होता है।

अग्नि तत्त्व

अग्नि को तेजस् रूप में भी जाना जाता है। इस तत्त्व का प्रकाश के रूप में जब पहली बार बोध होता है तो ऊर्जा के प्रकट होने की यह प्रथम अवस्था होती है। प्रकाश इस तत्त्व का प्रकट रूप है। प्रकाश के अभाव में ऐसा कोई भी स्वरूप नहीं है जिसे देखा जा सके। इस प्रकार अग्नि में वह गुण है जो वायु तत्त्व, जिससे उसका विकास हुआ है, की विभिन्न प्रकार की ऊर्जा को परिभाषित करता है या उसे एक रूप प्रदान करता है। अग्नि तत्त्व आकार या रूप के बोध के लिए उत्तरदायी है जिसका अनुभव चक्षु के द्वारा होता है।

रूप या आकार की उत्पत्ति का अहंकार के जन्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम जानते हैं कि अहंकार का स्वरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, जिसके परिणामस्वरूप आसक्ति होती है। इसलिए किसी रूप के अभाव में आसक्ति नहीं हो सकती है। अतः हमें अग्नि तत्त्व को केवल रूप का प्रथम प्रकटीकरण नहीं मानना चाहिए, बल्कि उसे उस अवस्था के रूप में देखना चाहिए जब अहंकार अपना प्रभाव जमाने लगता है। चूँकि प्रकाश ऊर्जा को स्वरूप प्रदान करता है, अहंकार जो साथ-साथ विकसित होता रहता है, उसे पहली बार स्वयं से पृथक किसी के होने का आभास होता है। इस प्रकार वैयक्तिक अहंकार का जन्म होता है।

प्रकाश विभिन्न आवृत्तियों पर ऊर्जा का कम्पन है और इसे विविध रंगों के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए तत्त्वों को दर्शाने वाले रंग तत्त्वविशेष के कम्पन की आवृत्तियों को सूचित करते हैं। अग्नि तत्त्व में ऊर्जा लाल रंग की आवृत्ति पर कम्पित होती है जो अग्नि या अत्यधिक ऊष्मा का संकेत देती है। इस प्रकार, तत्त्व शुद्धि में अग्नि का यंत्र अग्नि के समान लाल रंग का त्रिकोण होता है।

अग्नि तत्त्व को प्रायः नष्ट करने वाली शक्ति कहा जाता है और इसे अस्थिरता के रूप में जाना जाता है। हम अपने आसपास भी देखते हैं कि जो भी इसके सम्पर्क में आता है उसे अग्नि नष्ट कर देती है, उसके आकार, रंग और शायद उसकी नियति को भी बदल डालती है। इस अर्थ में अग्नि के प्रभाव को विनाशकारी कहा जा सकता है, किन्तु दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो इसे परिवर्तन, वृद्धि और विकास का उत्प्रेरक माना जा सकता है।



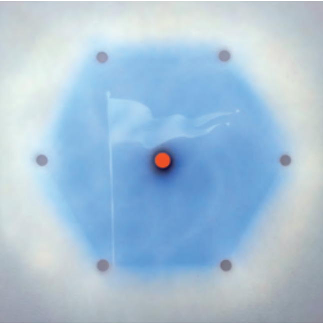
पृथ्वी (लं)



अपस् (वं)



अग्नि (रं)



वायु (यं)



आकाश (हं)

विकास की इस अवस्था में ऊर्जा का कम्पन जो विकिरण एवं ऊष्मा के लिए उत्तरदायी है, उसमें वृद्धि होती है। कम्पन में होने वाली इस वृद्धि से अग्नि तत्त्व के कण निरन्तर गतिमान रहते हैं और इस प्रकार स्वयं का प्रसार करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि अग्नि तत्त्व में वृद्धि करने के अतिरिक्त नष्ट करने की विशेषता भी है।

भौतिक शरीर में अग्नि तत्त्व जठराग्नि, क्षुधा, प्यास और निद्रा को नियन्त्रित करता है, और यह या तो उन्हें बढ़ाता है या नष्ट कर देता है। इसलिए, अग्नि तत्त्व को नियन्त्रित रखना आवश्यक है, और यही कारण है कि योग शास्त्रों में तांत्रिक एवं यौगिक अभ्यासों के द्वारा जठराग्नि को प्रज्वलित रखने का परामर्श दिया गया है।

अग्नि तत्त्व में पुनर्रचना करने का गुण होने के कारण इसे केवल विनाशकारी तत्त्व नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि विनाश के माध्यम से सृजन होता है। उदाहरण के लिए, धातु अयस्क की अशुद्धता को मिटाने के लिए अग्नि का प्रयोग किया जाता है और उसमें से सोने, चाँदी तथा अन्य धातुओं के शुद्ध सत्त्व को निकाला जाता है। दैनिक जीवन में भी अग्नि तत्त्व का प्रभाव वाद-विवाद, कलह, दुर्घटनाओं या यहाँ तक कि प्राकृतिक विध्वंसों का भी कारण हो सकता है, जिससे अनिवार्यत: परिवर्तन आता है और विकास होता है।

शरीर में अग्नि तत्त्व हृदय और नाभि के बीच के क्षेत्र में स्थित होता है। मानसिक रूप से यह अवचेतन मन से सम्बद्ध है। इसकी आत्मिक स्थिति मणिपुर चक्र में है। इससे सम्बन्धित आध्यात्मिक अनुभूति स्वर लोक और मनोमय कोश में होती है।

अपस् तत्त्व

अपस् की उत्पत्ति आप् से हुई है जिसका अर्थ होता है 'व्याप्त होना'। अपस् तत्त्व की व्याख्या एक अति क्रियाशील विशाल पदार्थ के रूप में की जा सकती है जो अग्नि तत्त्व से उद्भूत होने लगा है। यह ऐसा पदार्थ है जो अब तक सम्बद्ध और पृथक पिण्डों में विभक्त नहीं हुआ है, क्योंकि इस तत्त्व के अन्दर परावर्तित होते हुए अणु एवं परमाणु अब तक अव्यवस्थित हैं। ऐसा कहा जाता है कि भौतिक ब्रह्माण्ड प्रकट होने के पूर्व स्वयं को अपस् तत्त्व में व्यवस्थित कर रहा है। अत: 'सारगर्भित जल' अपस् के गर्भ में निहित ब्रह्माण्ड के विचार की ओर संकेत करता है।

हालाँकि अपस् तत्त्व में से प्रकट होने वाले पदार्थ के अन्दर की गति एवं क्रिया अति-सूक्ष्म है, क्योंकि इस अवस्था में अणु अत्यन्त सीमित क्षेत्र में बन्द रहते हैं। उदाहरण के लिए, जल में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के अणुओं को संचलन की उतनी स्वतन्त्रता नहीं होती है जितनी वाष्प में होती है। उसी प्रकार, अपस् तत्त्व के अणुओं को गति की वैसी स्वतन्त्रता नहीं होती है जितनी अग्नि, वायु या आकाश तत्त्व में होती है। अत: इसे अशान्त नहीं, बल्कि एक शान्त समुद्र के रूप में देखा जाता है, और तत्त्व शुद्धि में अपस् तत्त्व के यंत्र को जल से घिरे हुए एक श्वेत अर्ध चन्द्र के रूप में देखा जाता है।

भौतिक शरीर में भी अपस् ही पदार्थ के रूप में प्रकट होने वाला पहला स्पृश्य तत्त्व है जो रक्त, श्लेष्मा, पित्त, लसीका द्रव आदि के रूप में होता है। इस प्रकार यह शरीर के द्रवों को नियन्त्रित करता है।

चूँकि अपस् के अन्दर सद्य: उद्भूत् होने वाला पदार्थ निहित होता है, इसलिए सांसारिक घटनाओं पर इसका आकाश, अग्नि या वायु से अधिक रचनात्मक प्रभाव होता है। हालाँकि, अपस् तत्त्व के अन्दर का पदार्थ चूँकि स्वयं को निरन्तर नयी व्यवस्थाओं में परिवर्तित करता रहता है, इसलिए अपस् तत्त्व के क्रियाशील रहने पर जो लाभकारी परिणाम होते हैं, वे स्थायी नहीं होते। यह तत्त्व स्वयं से सम्बन्धित विचारों एवं सांसारिक कार्यों को भी प्रभावित करता है।

शारीरिक रूप से अपस् तत्त्व नाभि एवं घुटनों के बीच के क्षेत्र में स्थित होता है। मानसिक रूप से इसका सम्बन्ध अवचेतन और चेतन मन से होता है। इसकी आत्मिक स्थिति स्वाधिष्ठान चक्र में होती है। इस तत्त्व से सम्बन्धित आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भुव: लोक और प्राणमय कोश में होती हैं।

पृथ्वी तत्त्व

पृथ्वी पदार्थ/ऊर्जा का अन्तिम संश्लिष्ट तत्त्व है। पृथ्वी को भूमि भी कहते हैं जिसका अर्थ है 'होना' या 'अस्तित्व होना'। इसका अर्थ धरातल भी होता है और इस पर हम रहते हैं, अर्थात् यह अस्तित्व का होना सूचित करता है। पृथ्वी तत्त्व में ऊर्जा के कण इतने घनीभूत हो जाते हैं कि वे स्थिर प्रतीत होते हैं और प्रत्येक अणु के चारों ओर के निकटस्थ स्थान में ही घूमते रहते हैं। इस प्रकार, इस तत्त्व में ऊर्जा अपने स्थूल पदार्थ–ठोस, तरल या गैस के रूप में दिखाई देती है।

पृथ्वी तत्त्व में ऊर्जा इसके पूर्ववर्ती तत्त्वों से बहुत कम आवृत्ति पर कम्पित होती है और इसे पीले प्रकाश के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए तत्त्व शुद्धि में पृथ्वी तत्त्व के यंत्र को पीले चतुर्भुज के रूप में देखा जाता है।

पृथ्वी तत्त्व में सघनता, भार और सम्बद्धता का गुण होता है। भौतिक शरीर में यह अस्थियों एवं अन्य अंगों की ठोस कोशिका संरचना के रूप में होता है, और उनमें भार तथा घनत्व उत्पन्न करता है। पृथ्वी का विकास इसके पूर्ववर्ती तत्त्वों से हुआ है इसलिए इसमें उनके गुण भी विद्यमान है, फिर भी उसमें गंध का गुण प्रबल है। पृथ्वी का सूक्ष्म अवबोध गंध के रूप में होता है जिसका सम्बन्ध घ्राणेन्द्रिय, अर्थात् नाक से है।

वायु तत्त्व के विपरीत, पृथ्वी तत्त्व हर पक्ष–शारीरिक, मानसिक तथा वातावरण में स्थिरता और स्थायित्व लाता है। यह भौतिक लाभ और सांसारिक कार्यों के लिए अत्यन्त सहायक है।

शारीरिक रूप से पृथ्वी तत्त्व पैर की अँगुलियों तथा घुटनों के बीच के क्षेत्र में स्थित होता है। मानसिक रूप से यह मन के चेतन एवं अवचेतन स्तरों से सम्बद्ध होता है। इसकी आत्मिक स्थिति मूलाधार चक्र में होती है। आध्यात्मिक अनुभूतियों का सम्बन्ध भू लोक और अन्नमय कोश से होता है।

10

तत्त्व एवं कोश

पाँच तत्त्व या महाभूत विभिन्न स्तरों पर जिन स्वरूपों में प्रकट होते हैं उन्हें योग में कोश कहते हैं। कोश का शाब्दिक अर्थ 'आवरण' होता है, और इस संदर्भ में यह उन विभिन्न स्तरों का उल्लेख करता है जो मनुष्य के आन्तरिक सत्त्व, अर्थात् आत्मा या शुद्ध चेतना को आवृत करता है। कहा जाता है कि मनुष्य ऐसे पाँच कोशों से आवृत होता है, उनमें से प्रत्येक अपने पूर्ववर्ती कोश से अधिक सूक्ष्म होता है और प्रत्येक का सम्बन्ध सजगता और अनुभव के एक विशेष स्तर से होता है।

पहला और स्थूलतम आवरण अन्नमय कोश है जो भोजन का बना होता है; दूसरा प्राणमय कोश होता है जो प्राणों का बना होता है; उसके बाद मनोमय कोश आता है जो मन और विचारों का बना होता है; फिर विज्ञानमय कोश होता है जो अंतर्प्रज्ञा से सम्बन्धित होता है और सबसे अंत में अर्थात् पाँचवाँ आनन्दमय कोश होता है जहाँ आनन्द ही आनन्द होता है।

अन्नमय कोश का सम्बन्ध चेतन मन और भौतिक शरीर से है। मनोमय कोश का सम्बन्ध अवचेतन मन और सूक्ष्म शरीर से होता है; प्राणमय कोश उन दोनों के बीच की कड़ी है, जो मन की दोनों अवस्थाओं से और शरीर से सम्बद्ध होता है। आनन्दमय कोश का सम्बन्ध अचेतन मन और कारण शरीर से होता है जो अतीन्द्रिय चेतना की ओर प्रेरित करता है। विज्ञानमय कोश अवचेतन मन/सूक्ष्म शरीर तथा अचेतन मन/कारण शरीर के बीच की कड़ी है। अन्नमय कोश मुख्य रूप से पृथ्वी तत्त्व से, प्राणमय अपस् से, मनोमय अग्नि से, विज्ञानमय वायु से और आनन्दमय आकाश से प्रभावित रहता है।

मनुष्य के अस्तित्व के सूक्ष्म आयामों में केवल तंत्र, योग तथा अन्य आध्यात्मिक अभ्यासों के माध्यम से प्रवेश किया जा सकता है। तत्त्व शुद्धि साधना में आप श्वास नियन्त्रण और प्राणिक आपूर्ति में वृद्धि के द्वारा अन्नमय एवं प्राणमय कोशों को प्रभावित करते हैं। मनोमय एवं प्राणमय कोशों को ध्यान के द्वारा प्रभावित किया जाता है। विज्ञानमय कोश को तत्त्व-यंत्रों पर त्राटक करके जाग्रत किया जाता है। इन चार कोशों को प्रभावित करने से आनन्दमय कोश में एक अनुभूति होती है। यद्यपि, ऐसा कोई प्रत्यक्ष अभ्यास नहीं है जो आनन्दमय कोश को प्रभावित करता हो।

ये अनुभूतियाँ जो तत्त्व शुद्धि के कारण रंग, प्रकाश, गंध इत्यादि के रूपों में प्रकट होती हैं, उन अदृश्य शरीरों से उत्पन्न होती हैं। आप सूक्ष्म और कारण शरीरों में जितनी अधिक गहराई में जाते हैं, आपको उतनी अधिक अनुभूतियाँ होने लगती हैं क्योंकि तत्त्व शरीर की प्रत्येक कोशिका तथा अणु का अभिन्न अंग होता है। इस प्रकार तत्त्व शुद्धि साधना आपको उन सूक्ष्मतर स्तरों की गहराइयों में जाने में सक्षम बनाती है जिससे मनुष्य का आभा मण्डल बनता है।

लोक	**स्तर**	**मुख्य तत्त्व**
भू	शारीरिक स्तर	पृथ्वी
भुवः	माध्यमिक स्तर	अपस्
स्वः	दिव्य स्तर	अग्नि
महः	सन्तों एवं सिद्धों का स्तर	वायु
जनः	ऋषियों एवं मुनियों का स्तर	आकाश
तपः	मुक्त आत्माओं का स्तर	महत्
सत्यम्	परम सत्य का स्तर	शिव/शक्ति

सप्त लोक– चेतना के क्षेत्र

अदृश्य शरीर या कोश चेतना के सात स्तरों एवं अस्तित्वों से भी सम्बद्ध होते हैं। इन स्तरों को लोक कहा जाता है। प्रत्येक लोक के अस्तित्व का एक स्तर होता है जिसके माध्यम से चेतना विकसित हो रही है, क्योंकि यह धीरे-धीरे उस पदार्थ से मुक्त होने लगती है।

इन तत्त्वों का प्रभाव सत्य लोक के अतिरिक्त सभी लोकों में व्याप्त हो जाता है। सत्य लोक पंचतत्त्वों या महाभूतों के प्रभाव क्षेत्र से परे है। यह समझना आवश्यक है कि तत्त्व शुद्धि साधना के माध्यम से हम सजगता में वृद्धि करते हैं और अस्तित्व के सभी आयामों में तत्त्वों को शुद्ध करते हैं।

11

तत्त्व एवं स्वर

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि पंच तत्त्वों का विकास मन से, मन का प्राण से और प्राण का शुद्ध चेतना से हुआ है। इस प्रकार, तत्त्व सृष्टि के प्रत्येक स्वरूप में विद्यमान हैं। भौतिक शरीर में वे चित्त शक्ति, प्राण शक्ति एवं आत्म शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं, जो शरीर और मन पर नाड़ियों एवं श्वास या स्वर के माध्यम से कार्य करते हैं।

स्वर का अर्थ होता है 'प्रवाह' या 'गति'। नाड़ी का अर्थ भी 'प्रवाह' होता है। नाड़ी सूक्ष्म शरीर में शक्ति का प्रवाह है, और स्वर श्वास में शक्ति का प्रवाह है। इसलिए, स्वरशास्त्र का सम्बन्ध श्वास एवं नाड़ियों के प्रवाह के विज्ञान से है।

तीन शक्तियाँ जो श्वास में प्रवाहित होती हैं, वे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियों द्वारा प्रवाहित होती हैं जिन्हें इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि शारीरिक संरचना के अन्दर 72,000 नाड़ियों का जाल है। ये सभी सम्पूर्ण शरीर में प्राण का वहन करती हैं, किन्तु उनमें से तीन इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना का शरीर, मन एवं चेतना की मनोशारीरिक एवं आध्यात्मिक अवस्थाओं पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है।

चित्त शक्ति या इड़ा की शक्ति महत्त्वपूर्ण मानसिक ऊर्जा है जो विचार, मन और चित्त की सभी क्रियाओं को नियन्त्रित करती है। सभी मानसिक क्रियाएँ इड़ा के प्रवाह और उसकी प्रधानता का परिणाम हैं। ऊर्जा का यह प्रवाह बायीं नासिका के द्वारा श्वास से जुड़ा हुआ है, जो मस्तिष्क के दायें गोलार्द्ध की क्रियाओं को प्रभावित करता है। इसे चन्द्र स्वर भी कहा जाता है और इसे शरीर के अन्दर की ऊर्जा का ॠण ध्रुव माना जाता है।

प्राण शक्ति जो पिंगला में प्रवाहित होती है, महत्त्वपूर्ण जीवनी शक्ति है और इसे ऊर्जा का धनात्मक ध्रुव माना जाता है जो सभी शरीर की गत्यात्मक क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। आप पूरे दिन जो भी शारीरिक कार्य करते हैं, वह आपके अन्दर प्रवाहित होने वाली प्राण शक्ति के स्तर के परिणामस्वरूप होता है। पिंगला की क्रियाओं का सम्बन्ध दायीं नासिका से प्रवाहित होने वाले श्वास से है जो मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध की क्रियाओं को प्रभावित करता है। इसे सूर्य स्वर भी कहा जाता है।

तीसरी शक्ति है आत्म शक्ति, जो सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा प्रवाहित होती है; यह प्राण के प्रवाह का मुख्य मार्ग है। इड़ा मानसिक शक्ति का वहन करती है और पिंगला प्राण शक्ति का वहन करती है, जबकि सुषुम्ना आध्यात्मिक शक्ति का वहन करती है। सुषुम्ना निष्क्रिय शक्ति है और जब यह क्रियाशील होती है तब श्वास एक साथ दोनों नासिकाओं से प्रवाहित होता है। तब इड़ा एवं पिंगला, दोनों में प्रवाह सन्तुलित हो जाता है। इस परिस्थिति में मस्तिष्क के उच्चतर निष्क्रिय केन्द्रों की क्रियायें प्रभावित होती हैं।

भौतिक शरीर में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियाँ क्रमश:, परानुकम्पी, अनुकम्पी और स्वायत्त तंत्रिका तंत्रों के अनुरूप होती हैं। हालाँकि अधिकतर लोगों में सुषुम्ना नाड़ी आजीवन सुषुप्त रहती है। जब तक सुषुम्ना नाड़ी को तंत्र, योग या अन्य आध्यात्मिक अभ्यासों के द्वारा जाग्रत नहीं किया जाता है तब तक व्यक्ति पूर्णत: चित्त और प्राण शक्ति अर्थात् इड़ा/पिंगला के नियन्त्रण में ही रहता है।

ऊर्जा के ये तीन आयाम एक चक्र के रूप में श्वास या स्वर में प्रकट होते हैं। इड़ा या चन्द्र स्वर का प्रवाह लगभग एक घंटे का होता है, उसके बाद अगले एक घंटे के लिए यह पिंगला में बदल जाता है और उसके बाद पुन: इड़ा में चला जाता है।

परिवर्तन के समय कुछ क्षणों की अवधि में तीसरी नाड़ी, सुषुम्ना प्रवाहित होती है। यह चक्र दिन-रात चलता रहता है और उस पर चन्द्र/सौर गति का प्रबल प्रभाव पड़ता है, तथा यह चन्द्रमा के भ्रमण से होने वाली पूर्णिमा और अमावस्या से स्वयं को अनुकूलित करता है।

चूँकि सम्पूर्ण शरीर एवं मन की रचना पाँच तत्त्वों से हुई है, वे हमारे अस्तित्व के हर पक्ष में अन्तर्निष्ठ हैं और यहाँ तक कि स्वर के प्रवाह में भी इसका प्रमाण मिल जाता है। प्रत्येक तत्त्व की विशेष प्राणिक आवृत्ति होती

है जो शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है। तत्त्वों की क्रियायें श्वास या स्वर को विभिन्न दिशाओं में, विभिन्न दूरियों एवं अवधियों तक प्रवाहित करती हैं, और इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना की ऊर्जा–त्रिवेणी को प्रभावित करती हैं।

इड़ा/पिंगला नाड़ियाँ मेरुदण्ड में स्थित विभिन्न चक्रों में शक्तियों का वहन करती हैं। ये चक्र नीचे मूलाधार से आरम्भ होकर ऊपर आज्ञा चक्र तक हैं। इन चक्रों में कम्पन बढ़ जाता है और इड़ा/पिंगला इन्हें काटती हुई आगे बढ़ती हैं। चक्रों में भी तत्त्वों के प्रभाव को स्वर के द्वारा प्रेषित किया जाता है। प्रत्येक चक्र में एक तत्त्व की प्रधानता होती है। मूलाधार में पृथ्वी तत्त्व, स्वाधिष्ठान में जल, मणिपुर में अग्नि और अनाहत में वायु की प्रधानता है। आकाश, जो सूक्ष्मतम तत्त्व है, विशुद्धि को नियन्त्रित करता है, और विशुद्धि के अतिरिक्त जो चक्र हैं, उन पर अन्त:करण के सूक्ष्मतर तत्त्वों का प्रभाव होता है।

जिस प्रकार विभिन्न स्वर विभिन्न मानसिक, शारीरिक क्षेत्रों एवं आध्यात्मिक अनुभवों को प्रभावित और नियन्त्रित करते हैं, उसी प्रकार पाँच तत्त्वों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं जो हमारे मन, शरीर और चेतना की अवस्थाओं को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, जब पृथ्वी तत्त्व क्रियाशील रहता है, तो मनुष्य के विचार भौतिक उपलब्धियों से सम्बद्ध होते हैं, जबकि यदि आकाश प्रवाहित हो रहा है तो वहाँ कोई विचार नहीं होता है, बल्कि चित्त शान्त रहता है या वहाँ शून्य की स्थिति होती है। इसलिए, हम सजगता के जिन स्तरों का अनुभव कर रहे हैं, उन्हें समझने के लिए हमें केवल यह नहीं जानना है कि कौन-सा तत्त्व सक्रिय है, बल्कि यह भी जानना है कि उस समय कौन-सा स्वर प्रवाहित हो रहा है। अन्तिम विश्लेषण में स्वर और प्रबल तत्त्व, जो हमारी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और मन की अतीन्द्रिय अवस्थाओं को प्रभावित करते हैं, दोनों का मिश्रण होता है।

शिव स्वरोदय में कहा गया है कि यदि सुषुम्ना के प्रवाह के समय अग्नि तत्त्व प्रबल हो तो वह सभी कार्यों के फल को नष्ट कर देता है। इसका कारण यह है कि जब सुषुम्ना प्रवाहित होती है तब सजगता सूक्ष्मतम तत्त्व, परमतत्त्व में विलीन हो जाती है जो कार्य और फल के परे है। सुषुम्ना के साथ अग्नि तत्त्व का योग इस प्रभाव को बढ़ा देता है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि जब सुषुम्ना प्रवाहित होने लगती है तब व्यक्ति को सभी कार्य बन्द कर देने चाहिए और ध्यान या आध्यात्मिक अभ्यास करना चाहिए।

यदि सुषुम्ना के प्रवाह के समय आकाश तत्त्व सक्रिय हो तो मन अत्यन्त तीव्र गति से भ्रमण करता है; एक द्रुतगामी रॉकेट के समान उच्चतर अनुभव की ओर प्रक्षेपित होता है। उस समय भौतिक या बाह्य सजगता से परे चले जाना आसान होता है, और उस अवधि में ध्यान निस्संदेह अच्छे परिणाम देता है। हालाँकि यह संयोग विरले ही होता है।

इड़ा एवं पिंगला के प्रवाह के समय ये पाँच तत्त्व क्रमश: अलग-अलग जाग्रत होते हैं। चंद्र एवं सूर्य स्वरों के प्रत्येक घंटे में सभी पाँच तत्त्व वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल और आकाश के क्रम में अलग-अलग सक्रिय होते हैं। प्रत्येक तत्त्व एक निश्चित अवधि तक प्रवाहित होता है, और उसके बाद अगला तत्त्व उसका स्थान ले लेता है। किसी भी समय में स्वर में प्रबल तत्त्व का पता लगाने की कई विधियाँ हैं।

एक तत्त्वयोगी जिसे स्वर से सम्बन्धित तत्त्वों का ज्ञान है, वह अपनी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक अवस्थाओं की पहचान कर लेता है और उसी के अनुसार कार्य करता है। हालाँकि इससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि विभिन्न स्वरों में तत्त्वों की सजगता के माध्यम से अपनी वास्तविक प्रकृति के अनुरूप अनुभव को किस प्रकार उत्पन्न किया जाये।

तत्त्वों को स्वर से अलग किस प्रकार पहचाना जाये

इन तत्त्वों के अपने रंग, रूप, स्वाद, स्थान, दिशाएँ, अवधियाँ, क्रम और प्रवाह में दूरियाँ होती हैं जिन्हें आगे तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

एक तत्त्वयोगी प्रवाहित हो रहे सक्रिय तत्त्व से उत्पन्न होने वाली अनुभूति की प्रकृति के द्वारा उसे पहचान सकता है। तत्त्व की पहचान करने की कला में निपुणता प्राप्त करने के बाद वह प्रवाह को बढ़ा देने वाले विभिन्न तांत्रिक अभ्यासों के द्वारा तत्त्वों के अनुभव का विकास करता है।

इनमें से एक तत्त्व-यंत्र पर त्राटक का अभ्यास है। इन यंत्रों को उनके मंत्रों एवं रंगों के साथ धातु या काग़ज़ पर उत्कीर्ण किया जा सकता है। उसके बाद साधक कुछ दिनों तक प्रत्येक यंत्र पर उससे सम्बद्ध बीज मंत्र के मानसिक जप के साथ त्राटक करता है। पृथ्वी तत्त्व के साथ आरम्भ करते हुए अगले पर जाने से पूर्व पहले एक यंत्र में निपुणता प्राप्त करें। प्रत्येक अभ्यास के बाद चिदाकाश में देखते हुए तत्त्वों के प्रवाह को जाँचें और उन रंगों तथा आकारों को देखें जो वहाँ उभरते हैं।

तत्त्व

विशेषता

	पृथ्वी	अपस्	अग्नि	वायु	आकाश
रंग	पीला	श्वेत	लाल	स्लेटी – नीला	काले जैसा
आकार	वर्ग	अर्ध – चन्द्र	उलटा त्रिकोण	षड्भुज	वृत्ताकार
स्वाद	मीठा	कटु	तीखा	आम्लिक/ खट्टा	तीता
स्वर प्रवाह की दिशा	मध्य	अधोमुखी	ऊर्ध्वमुखी	तिर्यक्	बिखरा हुआ
अवधि	20 मिनट	16 मिनट	12 मिनट	8 मिनट	4 मिनट
क्रम	तीसरा	चौथा	दूसरा	पहला	पाँचवाँ
लम्बाई	12	16	4	8	–

चूँकि तत्त्वों का तन्मात्राओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए संवेदनाओं का अनुभव उनके सूक्ष्म रूप में भी हो सकता है। इसका अवलोकन भी करना चाहिए, क्योंकि यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। उदाहरण के लिए, साधक आन्तरिक ध्वनियाँ सुन सकता है, उसे सुगन्ध मिल सकती है, विभिन्न स्वाद मिल सकते हैं, या बिना किसी बाह्य वस्तु के त्वचा पर किसी स्पर्श का अनुभव हो सकता है।

तत्त्वों को समझने के लिए एक अन्य उपयोगी अभ्यास है नौमुखी मुद्रा और योनी मुद्रा या षण्मुखी मुद्रा । इसका अभ्यास करते समय आपको उन रंगों और आकारों का विश्लेषण करना है जो आपकी बन्द आँखों के सामने उपस्थित हो जाते हैं। एक दर्पण को नाक के नीचे रखकर और उस पर प्रश्वास के वाष्प से बनने वाले आकार से सक्रिय तत्त्व का पता चल सकता है।

छायोपासना, अर्थात् अपनी छाया पर त्राटक एक अन्य तांत्रिक अभ्यास है जो तत्त्व के प्रवाह की पहचान करने का एक उपयुक्त उपाय है। हालाँकि इसके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है और शास्त्रों में परामर्श दिया गया है कि इसमें निपुणता प्राप्त करने के लिए गुरु का मार्गदर्शन होना चाहिए।

ये तथा अन्य अभ्यास हैं जो तत्त्वों की क्रिया के ज्ञान और अनुभव का विकास करने में मदद करते हैं। ये बाह्य अवधारणाओं को अवरुद्ध करने और रंगों, ध्वनियों, गन्धों इत्यादि की आन्तरिक अवधारणाओं को सक्रिय करने की वैज्ञानिक विधियाँ हैं।

12

मंत्र, यंत्र एवं मण्डल

मंत्र, यंत्र एवं मण्डल का विज्ञान जटिल जाल के समान तंत्र के सिद्धान्त एवं दर्शन में व्याप्त है। तंत्र एक दर्शन एवं व्यावहारिक ज्ञान, दोनों है और इसके उत्कृष्ट सिद्धान्त मंत्र, यंत्र एवं मण्डल के उपयोग के माध्यम से प्रभावोत्पादक बन जाते हैं। हम प्राय: ऐसी पद्धतियों तथा दर्शनों से घिरे रहते हैं जो व्यक्ति के रूपान्तरण और उच्चतर ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने की बातें करती हैं। वे नैतिक एवं नीतिपरक अभ्यासों की बातें करती हैं जो निस्संदेह आदर्श विशेषताएँ होती हैं, लेकिन बहुत कम लोग ही उन्हें प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। बौद्धिक स्वीकृति किसी व्यक्ति के रूपान्तरण के लिए पर्याप्त नहीं है। वास्तव में, बिना किसी मार्गदर्शन के एक दर्शन का व्यावहारिक उपयोग करने की बात करना केवल बौद्धिकतावाद है।

तंत्र की यह अद्भुत विशेषता है कि वह बिना किसी व्यावहारिक व्याख्या और दैनिक जीवन में उनके उपयोग की पुष्टि किये हुए केवल आडम्बरपूर्ण या सूक्ष्म दर्शनों का दावा नहीं करता है। यह उसने मंत्र, यंत्र एवं मण्डल के अत्यन्त विकसित विज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया है। तंत्र के इन तीन मौलिक उपकरणों या साधनों की क्रियाओं को अच्छी तरह समझने के लिए, जिनका उपयोग तत्त्व शुद्धि सहित सभी तांत्रिक साधनाओं में किया जाता है, इनमें से प्रत्येक को समझना आवश्यक है।

मण्डल

सबसे पहले हमें मण्डल को देखना चाहिए जिससे तांत्रिक प्रतीकचित्रण, मंदिर, कला, वास्तुकला और संगीत का जन्म हुआ है। कोई भी आकृति जो

मानव चेतना के अन्दर चित्र या दृश्य के रूप में प्रकट होती है, एक मण्डल बनाती है। एक मण्डल की रचना करने के लिए आपको अपने अन्दर विचार नहीं, बल्कि दृश्य को उतना ही स्पष्ट देखने योग्य होना चाहिए जितना आप संसार को खुली आँखों से देखते हैं। आपका आन्तरिक दृश्य जितना स्पष्ट होगा, आपके द्वारा बनाया गया मण्डल उतना ही प्रभावशाली होगा।

मण्डल के सिद्धान्त के अनुसार यह एक वृत्त के अन्दर होता है। इस प्रकार, एक मण्डल जिसका मानस दर्शन किया जा रहा है, उसे एक वृत्त के अन्दर सन्तुलित होना चाहिए। इस तथ्य का कारण यह है कि वृत्त को एक आदि रूप माना जाता है, और यह विस्मयकारी तथ्य है कि हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं वह चपटी नहीं बल्कि गोलाकार या अण्डाकार है। मण्डल की रचना उसी सिद्धान्त पर आधारित है जो प्रकाश का वैज्ञानिक सिद्धान्त है। प्रकाश की तरंगे वक्र रेखा में चलती हैं, और मुड़कर चाप या वृत्तांश बनाती हैं। वृत्ताकार प्रभामण्डल मण्डल का एक आवश्यक तत्त्व है जो आज भी विद्यमान सभी प्राचीन तांत्रिक मण्डलों में स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाता है।

किसी भी वस्तु का मण्डल बन सकता है: वृक्ष, घर, मोटर गाड़ी, कोई पशु, मनुष्य; यहाँ तक कि आपका शरीर भी एक मण्डल है। जब आप अपने अन्तर्चक्षु से किसी वस्तु की आकृति का मानस दर्शन करते हैं, तो वह अत्यन्त स्पष्ट होता है, यहाँ तक कि आप अपनी खुली आँखों से जो देखते हैं, उससे भी अधिक स्पष्ट। आप एक ही वस्तु को अन्दर और बाहर भी देखते हो, किन्तु उसमें अन्तर यह होता है कि जब आप किसी वस्तु को उच्चतर मन के माध्यम से देखते हैं तब आपको कुछ क्षणों के लिए उस आकृति से परे भी कुछ दिखाई दे जाता है। इस प्रकार आप सामान्य आँखों से अधिक देख पाते हैं।

वास्तव में हम वृक्ष, घर, जानवर या किसी सुन्दर दृश्य को देखकर उसे चित्रपट या कागज पर उतार सकते हैं। हालाँकि वह एक अधूरा मण्डल है क्योंकि हम उस वस्तु के परे नहीं देख पाते हैं; हमने उस वस्तु का रेखीय आयाम या किसी रंग या ध्वनि के रूप में उसे नहीं देखा है। इसलिए, यह हमें उसका अर्थ नहीं बता पाया है जो उस तथ्य से परे विद्यमान है।

एक ऐसा मण्डल जिसमें क्षमता और शक्ति, दोनों हो, बनाने के लिए आन्तरिक स्पष्टता और आन्तरिक दृश्य की पुनर्रचना करने की योग्यता होनी

चाहिए। कुछ लोग स्पष्ट रूप से अन्दर देख पाते हैं, किन्तु वे बाह्य स्तर पर उसकी पुनर्रचना नहीं कर पाते हैं जो उन्होंने देखा है। यह प्राय: एक योग्य और अयोग्य कलाकार का अन्तर है। दोनों को एक समान आन्तरिक दृश्य दिखाई दे सकता है, किन्तु स्पष्टता और पुनर्रचना में अन्तर हो सकता है। इसलिए, मण्डल उस वस्तु का सत्त्व है जिसका बोध उस व्यक्ति को हुआ है जिसने अपने मानस दर्शन को परिष्कृत कर लिया है; एक आन्तरिक ब्रह्माण्ड का चित्र, जिसकी पुनर्रचना सब के लिए हुई है।

आप जिस मण्डल की रचना करते हैं वह आपकी चेतना के स्तर पर निर्भर करता है। आपकी चेतना जितनी विकसित होगी, आपका मण्डल उतना सार्वभौमिक होगा। एक सार्वभौमिक मण्डल वह है जिसकी रचना उस मन के द्वारा की गयी है जो ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ अनुकूलित हो चुका है। इस प्रकार यह सब के लिए उपयोगी और प्रासंगिक होता है, जबकि ऐसा मण्डल जिसकी रचना उस मन के द्वारा की गयी है जो अभी भी वैयक्तिक स्तर पर ही है, वह सर्वजन उपयोगी नहीं हो पाता है और उसमें दूसरे लोगों की चेतना को उच्चतर स्तर पर ले जाने की पूर्ण क्षमता नहीं होती है। इसके अतिरिक्त कुछ मण्डलों की रचना उन लोगों के द्वारा की गयी है जो भौतिक स्तर से परे जा चुके हैं और अतिचेतन के परम आनन्द में भावविभोर रहते हैं। ये ऐसे मण्डल हैं जो दूसरों में भी आध्यात्मिक अनुभूति उत्पन्न कर सकते हैं और ये मूल रूप से वही हैं जिनका उपयोग तंत्र में किया गया है।

हर संस्कृति और सभ्यता में अपने मण्डल होते हैं और उनकी रचना से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस समाज की चेतना का स्तर क्या था। सभी प्रकार की कलायें, मूर्तिकला, वास्तुकला आदि मण्डल की रचनाएँ हैं जिन्हें मन की गहराइयों में देखा गया और उसके बाद उनकी पुनर्रचना की गयी। इसीलिए उनमें इतनी गम्भीरता है, गहराई है और इतनी शताब्दियों के बाद भी वे इतनी पीढ़ियों के लोगों को प्रभावित करते, विस्मित करते आएँ हैं।

एक कलाकार द्वारा निर्मित और एक रहस्यवादी के द्वारा निर्मित मण्डलों में स्पष्ट अन्तर होता है। एक कलाकार अपनी आन्तरिक अनुभूति को ऐसी अवधारणा के रूप में प्रकट करता है जो समय और स्थान की सीमा से बँधी होती है, क्योंकि उसका अन्तस रहस्यवादी के समान गहरा नहीं होता है। वह प्राय: अपनी भावनाओं को प्रकट करता है, आध्यात्मिक सत्य को नहीं। दूसरी ओर, रहस्यवादी परिमित मन, भावनाओं तथा बुद्धि की सीमाओं

से बहुत आगे निकल जाता है, और इसीलिए उसकी अनुभूतियाँ ब्रह्माण्ड की सार्वभौमिक अवधारणाओं के साथ बहुत गहराई से सम्बद्ध होती हैं। कलाकार एवं रहस्यवादी, दोनों आन्तरिक सत्य का अन्वेषण करते हैं और उनका चित्रण करते हैं। यद्यपि एक कलाकार अपनी कलाकृतियों के माध्यम से अपने अनुभवों को प्रकट करता है, जबकि रहस्यवादी अपने एक अनुभव के आधार पर दूसरे का विकास करता जाता है। रहस्वादी का लक्ष्य अपने आन्तरिक दृश्यों को, बल्कि उससे भी गूढ़तर तथ्यों को प्रकट करना होता है। यदि एक कलाकार यही करे, तो वह एक रहस्यवादी में रूपान्तरित हो जायेगा। इसीलिए, जो कलाकृतियाँ आन्तरिक दिव्य अनुभवों पर आधारित होती हैं, वे समय की कसौटी पर खरी उतरती हैं, और एक अमर एवं शाश्वत विचार के रूप में विद्यमान रहती हैं।

भारत में यह महत्त्व का विषय है कि यहाँ कला, संगीत और वास्तुकला के सभी स्वरूप पूर्वजों की आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि से प्रभावित रहे हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत स्वर, ताल और छंद के मेल से मण्डल का निर्माण करता है जो चेतना के गहनतम स्तरों को आन्दोलित कर सकता है। अजन्ता एवं एलोरा गुफाओं की कलाकृतियाँ, खजुराहो के सुप्रसिद्ध मंदिर, उड़ीसा में कोणार्क का सूर्य मंदिर तथा इसी प्रकार की असंख्य कलाकृतियाँ वास्तव में मण्डल हैं जो अपने दर्शकों की चेतना को गहराई से प्रभावित करती हैं।

चेतना पर होने वाले प्रभाव अत्यन्त सूक्ष्म हैं, फिर भी स्पष्ट होते हैं। यह समझना कठिन है कि चेतना मन के किन स्तरों का अन्वेषण कर उन्हें प्रभावित करती है। अवचेतन और अचेतन मन मण्डलों के सम्पर्क में आते हैं, इसलिए वे आन्तरिक दृश्यों को प्रकट करने में सक्षम होते हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से मन के गहरे स्तर प्रकट होने लगते हैं।

तंत्र में मण्डलों का वर्णन दिव्य शक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है, जो पशु एवं मानव स्वरूपों के प्रतीक हैं। तंत्र का मानना है कि हमारी नियति को नियन्त्रित करने वाले दिव्यता के ये स्वरूप वस्तुनिष्ठ रूप में कहीं भी विद्यमान नहीं हैं। फिर भी तंत्र मानव रूप में दिव्यता की अवधारणा को विकसित करने की आवश्यकता अनुभव करता है, ताकि मनुष्य अपनी स्थूल सजगता के साथ इसे समझ पाये।

तंत्र यह प्रश्न करता है कि जो लोग अपने अन्दर देखने में असमर्थ हैं वे किस प्रकार निराकार सत्य का दर्शन या अनुभव करें? हम तो स्वयं अपने

विचारों का अनुभव नहीं कर पाते हैं, फिर उच्चतर सत्ता का अनुभव कैसे कर पायेंगे। इसलिए देवी एवं देवताओं के विस्तृत और आकर्षक प्रतीकों के रूप में मण्डलों को विकसित किया गया। अन्त में दिव्यता की स्थूल कल्पना से तिरोहित होना है और निराकार सत्य की अनुभूति को विकसित करना है।

देवी एवं देवताओं के मण्डल का प्रतीकशास्त्र आकृतियों, रंगों और वर्णनों से परिपूर्ण है। उनमें से कुछ अत्यन्त सुन्दर हैं, अन्य उत्तेजित करने वाले, कुछ कोमल एवं करुणापूर्ण, जबकि कुछ वीभत्स एवं भयावह हैं; कुछ में दिव्य शक्तियाँ झलकती हैं और कुछ भौतिक लाभ देने वाले हैं। प्रत्येक मंडल की संरचना बहुत ही विस्तृत विवरणयुक्त रेखाकृतियों से बनी होती हैं, ताकि साधक की चेतना में समानुरूप प्रतिक्रिया उभरे। मंडलों के इस प्रतीकशास्त्र का आधार मानव की सतत् संस्कारों को ग्रहण करती समग्र अचेतना की प्रणाली है। तथा यह मंडल इन संस्कारों को उसी प्रकार खींच कर बाहर निकालते हैं, जिस प्रकार कोई भारी चुम्बक रत्नों के ढेर में से लोहे के सूक्ष्म कणों को आकर्षित कर अलग कर देता है।

एक मण्डल पर ध्यान करने से गहराई से जड़ जमाये हुए संस्कार सक्रिय हो उठते हैं और स्वप्नों, दृश्यों और मानसिक क्रियाओं के रूप में अज्ञात रहस्यों को प्रकट करने लगते हैं। आप प्रत्यक्ष रूप से संस्कारों का सामना करने के लिए बाध्य नहीं होते हैं, इसलिए वे आपके दैनिक जीवन के कार्यों को प्रभावित नहीं करते हैं। वे ध्यान और स्वप्न के दौरान उभरने लगते हैं। यह उस भयंकर शत्रु से बचने का उपाय है जिससे आप स्वयं को सुरक्षित नहीं रख पाते हैं। इन मण्डलों में सौन्दर्यबोध और आकर्षण होता है। ये आपकी कल्पना को नियन्त्रित और निर्देशित करते हैं जो उच्चतर मन की सूक्ष्म कड़ी होती है।

सम्भवत: आज तक तंत्र का सबसे अधिक विवादास्पद मैथुन क्रिया का मण्डल रहा है। मैथुन क्रिया एक मण्डल का निर्माण करती है जिसके अनुरूप यंत्र और मंत्र होते हैं। खजुराहो मंदिरों की और उड़ीसा के कुछ मंदिरों की कामोत्तेजक मूर्तियों का निर्माण तंत्र की उस मान्यता के आधार पर हुआ है कि मैथुन क्रिया के द्वारा दिव्य शक्तियों का आवाहन किया जा सकता है। पुरुष शिव या धनात्मक ध्रुव का प्रतीक है और स्त्री शक्ति या ऋणात्मक ध्रुव का प्रतीक है। उनका बाह्य तथा आन्तरिक मिलन ऊर्जा के क्षेत्र का निर्माण करता है जो मण्डल होता है। इसका सम्बन्ध भोग-वासना से

नहीं होता है, बल्कि यह उच्चतम गुह्य स्तर पर होने वाला मिलन है जिसकी तुलना ऊर्जा और चेतना, शिव एवं शक्ति के मिलन से की जा सकती है।

लिंग एवं योनि मण्डल भी इस उच्चतर मिलन का प्रतीक है और इसीलिए इस प्रतीक को सदियों से भारत में श्रद्धापूर्वक देखा जाता है। लिंग उसका प्रतीक है जो दीप्तिमान है और योनि स्रोत का प्रतीक है। इसलिए लिंग को शुद्ध चेतना और योनि को ऊर्जा के स्रोत का प्रतीक मानना चाहिए। दोनों मिलकर सृजन शक्ति का निर्माण करते हैं। पुरुष और स्त्री का मिलन शारीरिक स्तर पर उस मिलन का पुन: अनुभव करने के लिए होता है जिसके फलस्वरूप उनका विकास हुआ है। जिस प्रकार आध्यात्मिक अनुभव एक आन्तरिक अनुभव होता है उसी प्रकार इस मिलन का आन्तरिक अनुभव होता है।

शायद तंत्र ही एकमात्र वह दर्शन है जिसने निर्भीकता के साथ ऐसा कहा है। अन्य इस विषय पर या तो मौन रहे हैं या उन्होंने इस विचार को पाप घोषित कर दिया है, जिससे मनुष्य में अपराधबोध और चरित्रहीनता का भाव आ जाता है। अपराधबोध और लज्जा के भाव को चेतना से बाहर निकालना अत्यन्त कठिन होता है। वे मनुष्य के अन्दर उसके कार्यों को, मन को, व्यक्तित्व और जीवन को प्रभावित करते हुए लम्बे समय तक जमे रह जाते हैं। जब तक मनुष्य उन अवरोधों को दूर नहीं कर पाता है तब तक वह उच्चतर अनुभव नहीं प्राप्त करता है। उस अनुभव की प्राप्ति के लिए अपराधबोध और लज्जा के भाव को जड़ से उखाड़ना होगा।

कुछ दार्शनिक सम्प्रदायों द्वारा पाप के विचार को चतुराई के साथ लोगों के मन में भर दिया गया था क्योंकि उनके लिए धर्म सत्ता का खेल हो गया था, और अपनी सत्ता को कायम रखने के लिए जनसमूह का समर्थन आवश्यक होता है। इसलिए उन लोगों ने जनसमूह में अपराधबोध और लज्जा के विचार को भर दिया ताकि समय के साथ उसका विष फैल जाये और उनके शरीर के प्रत्येक अंग, मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि को प्रभावित कर दे ताकि वे हमेशा के लिए उनके दास हो जायें।

तांत्रिकों को बाह्य शक्तियों की परवाह नहीं थी, क्योंकि उन लोगों ने आन्तरिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्हें जनसमूह की भी परवाह नहीं थी, बल्कि उन्हें परवाह थी केवल उन चुने हुए साहसी और वीरों की जो अन्दर के वास्तविक अनुभवों का सामना करने के लिए तत्पर थे। आज कुछ धर्मों के दमनकारी और चेतावनी भरे परामर्श के कारण मैथुन केवल एक बाह्य क्रिया

के रूप में विकृत होकर रह गया है। हालाँकि तंत्र के अनुसार मैथुन पाप नहीं है, बल्कि उपासना की एक क्रिया है जो व्यक्ति को निम्नतर चेतना से ऊपर उठने में सहायता करता है, यह एक ऐसा विचार है जिस पर अधिकतर लोग अपराधबोध और लज्जा से उत्पन्न कुंठा के कारण विश्वास नहीं करते हैं। इसलिए इस ज्ञान को गुप्त रखा गया और इसे केवल गुरु के द्वारा शिष्य को दिया जाने लगा। इससे चिरन्तन मण्डल की परम्परा की स्थापना हुई, क्योंकि गुरु और शिष्य परम्परा एक ही बिन्दु पर प्रारम्भ और समाप्त होती है। इससे यह प्रकट होता है कि यह परम्परा निरन्तर जारी है।

जब सावधानीपूर्वक इसकी जाँच की जाती है तो यह ज्ञात होता है कि तत्त्व शुद्धि के अभ्यास को एक मण्डल के रूप में कुशलतापूर्वक व्यवस्थित किया गया है। हम विकास के एक स्तर पर अभ्यास को प्रारम्भ करते हैं और अपने अन्तर की गहराइयों में जाते हैं। सृजन की क्रमविकास और विलय की प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद हम स्वयं को उसी बिन्दु पर पाते हैं, मानो यह एक अन्तहीन चक्र है जन्म-मृत्यु-जन्म का, जिसमें हम चलते चले जा रहे हैं। जब आप अपने जन्म और अस्तित्व के पीछे की वास्तविकता को देखते हैं तो मुक्ति की इच्छा उत्पन्न होती है जो आपको कारण एवं परिणाम के अन्तहीन चक्र से मुक्त करने वाले साधन को ढूँढने के लिए बाध्य करती है।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास को दिया गया यह वृत्ताकार स्वरूप कोई संयोग नहीं है। इसकी सुनियोजित रूपरेखा है, सुनियोजित विचार है, सुनियोजित शक्ति है, और वही शक्ति मण्डल की गुप्त शक्ति है जिसे आप तभी जान पाते हैं जब आप उसका अनुकरण करते हैं, ठीक वैसे, जैसे एक युवा अपने प्रथम प्रेम को पाने के प्रयास में लगा रहता है। अभ्यास आपको उस गुप्त शक्ति की एक झलक देता है; पलक झपकते ही वह अनुभव समाप्त हो जाता है, प्राय: आप यह जान भी नहीं पाते हैं कि आपको वह अनुभव हुआ था। हालाँकि, उसके प्रभाव को आप अपनी चेतना के सूक्ष्मतर आयाम में अनुभव कर सकते हैं, और यह आपके अस्तित्व का वह भाग है जहाँ तंत्र पहुँचना चाहता है।

यंत्र

जिस प्रकार मण्डल आन्तरिक दृश्य का सजीव चित्रण है उसी प्रकार यंत्र आन्तरिक दृश्य का अमूर्त गणितीय चित्रण है। सजगता ज्यों-ज्यों चेतना के

गहरे स्तरों में प्रवेश करती जाती है, आन्तरिक अनुभूतियों में परिवर्तन आते जाते हैं। वे अधिक अमूर्त और सार्वभौमिक होते जाते हैं, जैसा कि प्रकृति में देखा जाता है। प्रकृति वृक्ष, नदियाँ, समुद्र या आकाश वैसे नहीं हैं, जैसा कि हम उन्हें देखते हैं। वह उनका स्थूल रूप है। लेकिन उस स्थूल रूप के पीछे अमूर्त सूक्ष्म रूप होता है और इसी रूप में यंत्र की रचना होती है। प्रत्येक छवि के अनुरूप एक यंत्र होता है, जो रेखीय आयाम में अंकित होता है। वास्तव में, प्रकृति की हर वस्तु का अनुभव उसके मूल स्वरूप, यंत्र के रूप में किया जा सकता है।

जिस प्रकार सृष्टि या पदार्थ का प्रत्येक स्वरूप और कुछ नहीं, बल्कि ऊर्जा है, उसी प्रकार यंत्र में भी ऊर्जा अन्तर्निहित है। इसकी गणितीय परिशुद्धता के कारण यह ऊर्जा का भंडार है, और यंत्र पर मानस दर्शन तथा ध्यान के द्वारा आप अपने अन्दर उसके समतुल्य शक्ति को उत्पन्न कर सकते हैं।

यंत्र एक शक्ति-क्षेत्र का निर्माण करता है जो जीवन्त रहता है, श्वास लेता है और जीवन के साथ गतिमान रहता है, और उसके अन्दर दिव्य शक्तियों का आह्वान किया जा सकता है। इसको समझने के लिए आपको जन्मजात क्षमताओं को तीक्ष्ण करके देखने की नयी विधि का विकास करना होगा। उन क्षमताओं में ही सम्बद्ध प्रतिरूप संचित होते हैं। ये प्रतिरूप आपके अन्दर ही होते हैं और ये आपके क्रोध, लालच और अन्य मनोभावों के समान आपके अंश होते हैं।

यंत्र मौलिक आदिकालीन आकृतियों, जैसे बिन्दु, वृत्त, चतुर्भुज तथा त्रिभुज के मिश्रण से बने हुए होते हैं। यंत्र का केन्द्र हमेशा एक बिन्दु होता है। बिन्दु वह बीज है जिससे सृष्टि का विकास होता है जो पुन: उसी में लौट जाती है, अर्थात् सृजन एवं विलय की प्रक्रिया। यह ब्रह्माण्ड के द्वित्व, शिव एवं शक्ति, चेतना एवं ऊर्जा के मिलन का प्रतीक है। बिन्दु सृजन के पूर्व उनके मिलन की अवस्था का प्रतीक है। यह भौतिक शरीर में भी केन्द्र के रूप में स्थित रहता है जिसे बिन्दु विसर्ग कहा जाता है जो सिर के शीर्ष पर पीछे की ओर रहता है। ध्यान करते समय साधक एकाग्र होने के लिए केन्द्र बिन्दु के रूप में यंत्र के बिन्दु का प्रयोग करता है ताकि भौतिक शरीर के बिन्दु के अन्दर समय के सिमट जाने का अनुभव हो सके।

क्षेत्र को तीन रेखाओं से कम में रूपायित नहीं किया जा सकता है, इसलिए त्रिभुज को सृजन के क्रम में विकसित होने वाला पहला स्वरूप माना जाता

है। इस त्रिभुज को मूल त्रिभुज कहा जाता है। अपने अधोमुखी स्वरूप में यह सृजन के मूल स्थान अर्थात् प्रकृति का और ऊर्ध्वमुखी स्वरूप में पुरुष या चेतना का प्रतीक होता है। हम प्राय: यंत्र में अधोमुखी और ऊर्ध्वमुखी त्रिभुजों को परस्पर एक दूसरे को काटते हुए देखते हैं। ये दोनों त्रिभुज चेतना एवं ऊर्जा के प्रतीक हैं।

वृत्त निरन्तर चलने वाले चक्र का प्रतीक है जिसमें न आरम्भ है और न ही अन्त, केवल निरन्तरता है, नित्यता है, और इसका तात्पर्य है कि जन्म, जीवन और मृत्यु उस अनन्तकाल तक चलने वाले चक्र की घटनाएँ हैं। समकोण चतुर्भुज वह आधार है जिस पर यंत्र स्थित रहता है और उस भौतिक संसार का द्योतक है जिसे अन्ततोगत्वा पार कर जाना है, उससे आगे बढ़ जाना है।

यंत्र की दृष्टिगत धारणा, यद्यपि प्रतीकात्मक है, फिर भी मनुष्य के आध्यात्मिक विकास एवं अनुभव के संदर्भ में इसका बहुत महत्त्व है। यह बाह्य भौतिक अनुभव से मनुष्य के सृजन और उसके अस्तित्व के आन्तरिक प्रकोष्ठों तक एक मार्ग का निर्माण करता है। यह इतने सूक्ष्म और क्रमबद्ध ढंग से होता है कि चेतन मन की सीमाओं के अन्दर से कोई उसे समझ नहीं पाता है। फिर भी यह क्रिया चेतन या अन्य रूप में चलती रहती है।

यह पाया गया है कि उन बच्चों के बौद्धिक स्तर, अन्तर्जात अनुक्रिया और मानसिक सजगता में अद्भुत सुधार हुआ जो बिना चेतन रूप से ध्यान दिये हुए भी यंत्र और मण्डलों के सम्पर्क में रहे। यंत्र हमारी रचनात्मक एवं अन्तर्जात बुद्धि को प्रभावित करता है, हालाँकि इसका वास्तविक महत्त्व आध्यात्मिक अनुभव को उत्पन्न करने में है। धीरे-धीरे, किन्तु क्रमश: और व्यवस्थित ढंग से यंत्र हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व की रचना करने वाले स्तरों की विविधता को प्रकट करता है। तत्त्व शुद्धि साधना में हम जो यंत्र बनाते हैं वे ऊपर वर्णित चार आदिकालीन स्वरूप होते हैं।

मंत्र

जिस प्रकार प्रत्येक विचार के अनुरूप एक छवि होती है या स्वरूप होता है, उसी प्रकार प्रत्येक स्वरूप का एक नाद होता है या ध्वनि होती है। इन ध्वनियों को मंत्र कहते हैं। मंत्र का शाब्दिक अर्थ है 'उस पर ध्यान करना जो मोक्ष प्रदान करता है।' निस्संदेह यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है, फिर भी एक ध्वनि के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने की सम्भावना आश्चर्यचकित कर देती है।

हालाँकि हमने ध्वनि की शक्ति का पूरा आकलन नहीं किया है, फिर भी हम जानते हैं कि ध्वनि में काँच को चकनाचूर कर देने की या बर्फ की चट्टान को खिसकाने की क्षमता होती है। मानव मस्तिष्क और शरीर के अतिरिक्त पशुओं और वनस्पतियों पर ध्वनि के प्रभाव के विषय में हम अधिक नहीं जानते हैं। इसलिए हम निश्चित रूप से यह स्वीकार कर सकते हैं कि हमारे अन्दर कुछ स्तरों को ध्वनि प्रभावित करती है। फिर भी हमारे सामने यह विचार रखा जाता है कि ध्वनि के द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है तब हम कहते हैं, "नहीं, यह असम्भव है।"

वस्तुतः हम पहले ही यह देख चुके हैं कि नाद ही सृष्टि का पहला प्रकट रूप है। बाइबल में भी कहा गया है, "प्रारम्भ में शब्द था।" भारतीय दर्शन में यह 'शब्द' 'ॐ' के नाम से जाना जाता है जो शाश्वत नाद या ब्रह्माण्डीय मंत्र है। माण्डुक्योपनिषद में ॐ मंत्र की स्पष्ट व्याख्या है और यह बताया गया है कि चेतना के विभिन्न स्तरों को यह किस प्रकार प्रेरित करता है तथा किस प्रकार उनका विस्तार करता है। ॐ मंत्र तीन ध्वनियों 'अ', 'उ' एवं 'म' के मेल से बना है, और इनमें से प्रत्येक ध्वनि भिन्न-भिन्न आवृत्ति पर स्पन्दित होती हैं। ये आवृत्तियाँ चेतना को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। जब आप ॐ मंत्र का उच्चारण करते हैं तब वास्तव में आप अपनी चेतना को मंत्र की आवृत्तियों पर ले जाते हैं। सभी मंत्रों के साथ ऐसा ही होता है।

नाद की चार आवृत्तियाँ होती हैं– परा (ब्रह्माण्डीय), पश्यन्ति (कारण), मध्यमा (सूक्ष्म) एवं वैखरी (स्थूल), जो ॐ की आवृत्तियों के चार स्तर– चेतन, अवचेतन, अचेतन और तुरीय अवस्थाओं के समान हैं, जो आपके मंत्रोच्चार द्वारा उत्पन्न हुई आवृत्तियों के स्तर पर निर्भर रहती है। अधिकतर साधक वैखरी या मध्यमा अवस्थाओं में ही रहते हैं, इसलिए मोक्ष की अनुभूति से दूर-दूर तक उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

सम्पूर्ण संस्कृत भाषा की रचना मंत्रों से हुई है। संस्कृत भाषा की इकाई अक्षर है; अक्षर का अर्थ होता है, जिसका क्षरण अर्थात् विनाश नहीं हो। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर मंत्र है और उसका उसी रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इसीलिए कहा गया है कि संस्कृत में वेदों का अध्ययनमात्र मुक्ति की ओर ले जाता है। संस्कृत भाषा का मानव चेतना से गहरा सम्बन्ध है, और ये केवल शब्द नहीं हैं जिनकी रचना केवल अभिव्यक्ति के लिए हुई हो।

मंत्र का सबसे शक्तिशाली रूप बीज मंत्र है। बीज मंत्र मूल ध्वनियाँ होते हैं जिनसे अन्य सभी मंत्र और ध्वनियाँ उत्पन्न हुई हैं। बीज मंत्र संघनित ऊर्जा की शक्ति होती है और उसे चेतना के एक विशेष स्तर का श्रेय दिया जाता है।

तत्त्व शुद्धि में हम जिन मंत्रों का उपयोग करते हैं, वे पाँच तत्त्वों के बीज मंत्र हैं। यह आवश्यक है क्योंकि बीज मंत्र आपके अस्तित्व के मूल कारण को प्रभावित करते हैं। इन मंत्रों के अर्थ को ढूँढना व्यर्थ है। एक मंत्र से जो अर्थ प्रकट होता है वह गूढ़ और आध्यात्मिक होता है; इतना कहना ही पर्याप्त है कि आप मंत्रों के द्वारा अपनी अन्तरात्मा और ब्रह्माण्ड के सम्पर्क में आ जाते हैं।

तंत्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि भौतिक शरीर के प्रत्येक अंग का एक मंत्र होता है जो उस अंग को प्रभावित करता है। इन मंत्रों का उपयोग न्यास अनुष्ठान में उन उच्चतर शक्तियों के अनुरूप भौतिक शरीर को धारक पात्र बनाने के लिए किया जाता है जिन्हें तत्त्व शुद्धि तथा अन्य गुह्य अभ्यासों के द्वारा जाग्रत किया जाता है।

न केवल शारीरिक अंगों के मंत्र होते हैं, बल्कि श्वास की गति से उत्पन्न ध्वनि भी मंत्र होती है। इस ध्वनि को 'सोऽहम्' और 'हम्सो' कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति हर श्वास के साथ 21,600 बार अहर्निश आजीवन सो और हम् का उच्चारण एक साथ सहज रूप से करता है। इसलिए इसे अजपा जप मंत्र कहा जाता है। उपनिषदों में कहा गया है कि केवल इसी मंत्र पर ध्यान करना ही कुण्डलिनी तथा उच्चतर सजगता को जाग्रत करने के लिए पर्याप्त होता है। तत्त्व शुद्धि में हम इस मंत्र का उपयोग प्रारम्भ में सार्वभौमिक चेतना के साथ एकात्मता की अनुभूति प्राप्त करने के लिए करते हैं।

मंत्र या तो क्रूर होते हैं या परोपकारी या मिश्रित होते हैं; यह उन अक्षरों पर निर्भर करता है जिनसे उनकी रचना हुई है। उदाहरण के लिए, जिन मंत्रों में अग्नि या वायु तत्त्व की अधिकता होती है वे विनाशकारी होते हैं, जबकि पृथ्वी और अपस् तत्त्वों की मात्रा अधिक होने पर वे परोपकारी हो जाते हैं। आकाश तत्त्व से बना हुआ मंत्र आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये लाभकारी होता है।

मंत्र यंत्रों से अभिन्न होते हैं। प्रत्येक यंत्र के अनुरूप एक मंत्र होता है जिसके उच्चारण से यंत्र इष्ट फलदायक हो जाता है। नाद के उच्चतर स्तर की आवृत्ति पर मंत्रों का उच्चारण करने पर चेतना का उत्थान होता है और यंत्र पर ध्यान करने पर चेतना विस्फोटक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है।

सजगता के एक स्तर पर आन्तरिक अनुभव विचार और भावना के रूप में रहता है; एक उच्चतर स्तर पर यह आन्तरिक चित्र या मण्डल में परिवर्तित हो जाता है। जब आप अधिक गहराई में जाते हैं तो यह एक अमूर्त प्रतीक या यंत्र के रूप में प्रकट होता है जो बाद में शुद्ध ध्वनि, नाद या मंत्र के रूप में प्रकट हो जाता है। अनुभव के हर स्तर पर ऊर्जा विभिन्न प्रकार से प्रकट होती है। ऊर्जा की आवृत्ति जितनी सूक्ष्म होती है, अनुभव उतना गहरा होता है।

मन को भी एक शक्ति के रूप में समझना चाहिए, मनोवैज्ञानिक रचना के रूप में नहीं। जब मन ऊर्जा की निम्नतर, स्थूलतर आवृत्तियों पर क्रियाशील रहता है तब यह निश्चल, कुन्द, तामसिक हो जाता है, लेकिन जब आप मंत्र, यंत्र एवं मण्डल के द्वारा आवृत्तियों को सूक्ष्म बना देते हैं तब यह तामसिक अवस्था को पार कर राजसिक अवस्था में और उसके बाद शुद्ध सत्त्व की अवस्था में चला जाता है, जहाँ मन अत्यन्त सूक्ष्म आवृत्तियों पर होता है।

मंत्र, यंत्र और मण्डल के विषय में निष्कर्ष

तांत्रिक मंत्र, यंत्र एवं मण्डल योगियों और द्रष्टा ऋषियों को अपने अन्तर की गहराइयों में प्राप्त हुई दिव्य दृष्टि के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं। उन लोगों ने ब्रह्माण्ड की प्रकृति का गहन मन्थन किया था। वे आध्यात्मिक ज्ञान, परम आनन्द और अनुभूतियों की उच्च अवस्थाओं के परिणाम हैं। मन की उस अवस्था में चेतना सभी अवरोधों के परे चली जाती है, और तब उस अनुभूति को महत् और व्यापक कहा जाता है।

जब तक आप समय और स्थान से बँधे हुए होते हैं, तब तक आपके अनुभव सीमित और उसी आयाम से जुड़े हुए होते हैं। हालाँकि जब आप उसको पार कर जाते हैं तब न धर्म होता है, न जाति, न सम्प्रदाय और न लिंग होता है, तब ऐसे में दृष्टि सीमित कैसे हो सकती है? इसके अतिरिक्त, मन की उस अवस्था में आप प्रकृति की सम्पूर्ण प्रक्रिया के साथ एकाकार हो जाते हैं और उसके साथ तादात्मय स्थापित कर सकते हैं। उसके बाद सभी दृश्य परम सत्य के अंग बन जाते हैं और वे छवियाँ प्रकृति की प्रत्येक प्रक्रिया के नियमों का पालन करती हैं। तांत्रिक मंत्रों, यंत्रों एवं मण्डलों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जो पूर्णत: रेखीय एवं ज्यामितीय संगति और सन्तुलन में होते हैं।

तांत्रिक पद्धति में प्रत्येक मंत्र, यंत्र एवं मण्डल की विस्तृत गणना होती है। यदि गणित की यथातथ्य गणना के अनुसार सन्तुलन नहीं होता है तो यह

अपूर्ण होने के साथ-साथ परोपकारी नहीं होता है। इनमें से कुछ मण्डलों एवं यंत्रों की प्रामाणिकता को उनके गणितीय सन्तुलन की एक झलक में देखा जा सकता है। वास्तव में, वही पहला पक्ष है जो आपका ध्यान आकर्षित करता है।

तांत्रिक पद्धति में मण्डल उच्चतर शक्ति का एक दृश्य प्रतीक होता है, यंत्र उस शक्ति का अमूर्त रूप होता है और मंत्र उसका सूक्ष्म स्वरूप होता है। इस प्रकार, प्रत्येक मण्डल के अनुरूप उसका यंत्र और मंत्र होता है तथा साधक के स्तर के अनुसार एक के स्थान पर दूसरे को लाया जा सकता है, क्योंकि उनसे समान परिणाम ही प्राप्त होते हैं। हालाँकि विभिन्न देवता चेतना के भिन्न स्तर से सम्बन्धित होते हैं और उनका चयन उसी आधार पर किया जाना चाहिए।

अत: तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में यंत्रों और मण्डलों की रचना को धर्म, गुप्त, गुह्य रहस्यमय प्रतीकों के रूप में नहीं, बल्कि अत्यन्त प्रबल शक्ति के रूप में समझना चाहिए, जो आपकी चेतना के विस्तार के लिए आपके अन्दर वैसी ही आवृत्ति को उत्पन्न कर सकती है।

13

मानस दर्शन एवं कल्पना

तंत्र साधक के लिए शीघ्रतापूर्वक प्रगति करने का मुख्य कारण है मानस दर्शन की विस्तृत प्रक्रिया, जिसकी रूपरेखा सभी तांत्रिक साधना के लिए बनायी गयी है। कल्पनात्मक और रचनात्मक मानस दर्शन, जिस पर तंत्र बल देता है, यूँ ही यादृच्छिक ढंग से नहीं चुना गया है, बल्कि यह गहराई से आत्मिक जगत, जो प्रतीकों का जगत है, उससे सम्बद्ध है और उस पर आधारित है। प्रतीकों का आविष्कार करता हुआ मन ऐसे विचारों की ओर प्रेरित होता है जिन्हें तर्क के आधार पर नहीं समझा जा सकता है, लेकिन निस्संदेह उसका सम्बन्ध व्यक्ति के संरचनात्मक अतीत से होता है जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती है।

आज, पाश्चात्य विचारकों एवं दार्शनिकों के प्रभाव के कारण संसार तथ्यात्मक प्रमाणों पर या वास्तुनिष्ठ अनुभवों पर आधारित ज्ञान से अधिक जुड़ गया है। ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो मानव की समझ से परे हैं और उन्हें प्रयोगशाला में प्रमाणित भी नहीं किया जा सकता है, लेकिन मन की गहराइयों में व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से समझा जा सकता है। आन्तरिक अनुभूतियों के रूपान्तरकारी गुणों के कारण विश्लेषण के विषयपरक होने के बावजूद उन पर ध्यान देना आवश्यक है।

उन आन्तरिक दृश्यों का विकास करने के लिए रचनात्मक कल्पनाशीलता और मानस दर्शन की क्षमता को अपने अन्दर उत्पन्न करना अनिवार्य है। कल्पनाशीलता एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विचार करने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों के उस आयाम का निर्माण करता है जिसे तार्किक विचार प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आपकी कल्पना जितनी व्यापक होगी, अनुभूति का क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा।

हम किसी न किसी रूप में कल्पना करने में सक्षम होते हैं, लेकिन वह अपर्याप्त होता है। वे कल्पनाएँ सीमित होती हैं और सम्भावनाओं की सीमाओं को पार नहीं कर पाती हैं। वे सामान्य, सामाजिक नैतिक आचारों और विचार प्रक्रिया की सीमा में ही अवरुद्ध रह जाती हैं। इसके अतिरिक्त वे विचार के परे नहीं जा पाती हैं; वे दृश्य कभी नहीं बन पाती हैं। यदि वे बन पातीं तो हम सब दूरदर्शी और द्रष्टा बन गये होते। द्रष्टा वह है जो अपने अन्तर में देख सकता है; उसने अपनी कल्पनाशीलता को इतना विकसित कर लिया है कि सभी ज्ञान उसे दृश्य के रूप में प्राप्त होते हैं। वह अपनी उन्हीं क्षमताओं का उपयोग करता है जो हम सब के पास हैं, लेकिन उपयोग करने का उसका तरीका अधिक गत्यात्मक और व्यापक होता है।

कल्पना – सृजनात्मक शक्ति का स्रोत

यह पाया गया है कि जिनमें प्रबल कल्पनाशीलता होती है, उनमें सृजन की क्षमता होती है, क्योंकि कल्पनाशीलता एक मानसिक शक्ति है जिसका किसी भी रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जब आप दृश्यों और प्रतीकों के आन्तरिक जगत की रचना करते हैं तब मन की शक्ति को बल मिलता है क्योंकि वह आप ही हैं जो अपनी मानसिक शक्ति के द्वारा अपने अन्दर आदिरूप में सुप्त व्यापक क्षमताओं से उन छवियों का निर्माण कर रहे हैं। एक बार जब मन की शक्तियाँ कल्पनाशीलता के रूप में विकसित हो जाती हैं और उस विचारशृंखला का निर्माण करती हैं जिसे आप आगे ले जाना चाहते हैं तब यह सहज ही अपने लक्ष्यों को पूरा करने की क्षमता का विकास कर लेती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में कैंसर के रोगियों का इलाज करने के लिए मानसिक दर्शन की प्रक्रिया का अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। ऑस्ट्रेलिया के प्रख्यात चिकित्सक डॉ. एन्स्लाइ मिरेज़ और अमेरिका के डॉ. साइमॉन्टन, दोनों ने उपचार की प्रक्रिया में रोगी के द्वारा मानस दर्शन पर प्रयोग किये हैं। रोगी को मानस दर्शन की ऐसी शृंखलाओं के लिए प्रेरित किया गया जिसमें स्वस्थ कोशिकाएँ एवं ऊत्तक अस्वस्थ कोशिकाओं एवं ऊतकों पर उसी प्रकार आक्रमण करते हैं जिस प्रकार एक सेना दूसरी सेना पर आक्रमण करती है। इसमें सफलता रोगी की ध्यान केन्द्रित करने की, एकाग्रता की और अपने अन्दर इस प्रक्रिया का मानस दर्शन करने की क्षमता पर निर्भर करती है। इस प्रकार के प्रयोगों के परिणाम निश्चित रूप से सुखद रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कैंसर के रोगियों के इलाज में इस पक्ष पर बल दिये जाने की प्रेरणा तंत्र और योग से ली गई है। तंत्र में मानस दर्शन और रचनात्मक कल्पना वस्तुनिष्ठ एवं विषयनिष्ठ आयामों के बीच एक सेतु का कार्य करती है। आपकी कल्पना आपके वस्तुनिष्ठ अनुभवों पर केन्द्रित हो सकती है, किन्तु आप जिन छवियों की रचना करते हैं वे पूर्णत: विषयनिष्ठ होती हैं।

यही कारण है कि तंत्र ने प्रतीकशास्त्र की व्यापक कला का विकास किया है। प्रतीक उस आधार के रूप में कार्य करता है जहाँ से साधक की कल्पना को एक दिशा, एकाग्रता और ध्यान केन्द्रित करने का माध्यम मिलता है। अमूर्त कल्पना निस्संदेह अधिक शक्तिशाली होती है, लेकिन कम ही लोग रचनात्मक ढंग से लाभदायक परिणाम प्राप्त कर पाते हैं। अधिकतर लोगों को हर चरण पर मार्गदर्शन और निर्देशों की आवश्यकता होती है क्योंकि मन अप्रशिक्षित रहता है। बहुत आसानी से इसमें विक्षेप और विचलन होता है या यह अनियन्त्रित हो जाता है। यदि आपकी कल्पना विनाश पर आधारित हो, तो यह खतरनाक हो सकती है। इसीलिए योगानुशासन आवश्यक होता है ताकि मन स्वत: साधक के नियन्त्रण में रहे, भले ही वह किसी भी ऊँचाई पर पहुँच गया हो।

अपनी कल्पना का उपयोग एक रचनात्मक शक्ति के रूप में करने के लिए एक विचार को उत्पन्न करना, उस पर मानस दर्शन करना और उस पर ध्यान को तब तक एकाग्र रखना आवश्यक है जब तक आप इसे इसकी पराकाष्ठा पर नहीं ले जाते हैं। केवल तभी मन शक्तिशाली हो सकता है। हालाँकि मन इस प्रक्रिया में कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है और इसीलिए औसत व्यक्ति निराश और कुंठित हो जाता है।

तत्त्व शुद्धि में आपको अपने अन्तर का अन्वेषण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। आपको रंगों, ध्वनियों और चित्रों की रचना करने के अवसर दिये जाते हैं और अमूर्त विचारों को उत्पन्न कर मूर्त रूप में उनका मानस दर्शन करने के लिए कहा जाता है। आप वीभत्स के साथ-साथ सुखद छवियों के सम्पर्क में भी आते हैं। हालाँकि आपकी मदद के लिए कुछ विशेष निर्देश होते हैं, फिर भी जितना सम्भव हो, आपको स्वयं प्रयास करने के अवसर दिये जाते हैं।

प्रारम्भ में छवियाँ केवल विचार के रूप में होती हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनका विकास स्पष्ट चित्रों के रूप में हो जाता है। यह तभी हो पाता है जब मन अधिक केन्द्रित होता है। जब मन इन चित्रों पर, जिन्हें स्वयं आपने बनाया

है, स्थिर रहता है तब आप उन सूक्ष्म अनुभवों की ओर प्रेरित होते हैं जिन पर सामान्यत: आपका ध्यान नहीं जाता है।

कल्पना के लिए निर्देश होने चाहिए

हमें सूक्ष्म एवं गहरी आन्तरिक अनुभूतियों का विकास करने की विधि के रूप में कल्पना और मानस दर्शन की प्रक्रिया पर ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त मन की शक्ति में वृद्धि करने की विधि के रूप में भी इसे विकसित करना चाहिए, न कि किसी बात को दिमाग में बैठाने के लिए इसका विकास किया जाना चाहिए, जैसा कि अनेक आलोचक मानते हैं। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में हम जिन प्रतीकों एवं चित्रों का उपयोग करते हैं, उनका चयन उनकी व्यापकता के कारण किया गया है। उन्हें विषयनिष्ठ अनुभवों का परिणाम माना जा सकता है जिन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से प्रमाणित किया जा सकता है। वे आदिकालीन शाश्वत प्रतीक हैं जो मनुष्य में गहरी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ उत्पन्न कर सकते हैं, वह भले ही किसी भी राष्ट्रीयता या धर्म का व्यक्ति हो। इनकी जाँच-परख उन लोगों ने की है, जिन्होंने अपने अन्तर को उद्भासित कर लिया है, और जो आपके तथा उस परम आत्मा के बीच की कड़ी हैं जिसे प्राप्त करने के लिए आप प्रयासरत हैं।

तांत्रिक मूर्तियाँ प्राय: तर्क की सीमाओं से परे चली जाती हैं। कभी-कभी इन मूर्तियों के सोलह हाथ और तीन आँखें होती हैं, कुछ चित्रण निवस्त्र और रक्तपान करते हुए रूप में होता है, जबकि कुछ अन्य को विनाशकारी शस्त्रों के साथ दर्शाया जाता है। काली का वर्णन मुण्डमाला धारण किये हुए होता है, जबकि शिव का वर्णन शरीर पर रेंगते हुए सर्पों के साथ। उन मूर्तियों के प्रतीकात्मक महत्त्व के अतिरिक्त, इन वर्णनों के माध्यम से तंत्र यह बतलाता है कि जीवन कभी भी एक साँचे में नहीं बनता है, एक विचार और एक विचार-प्रक्रिया के अनुसार नहीं चलता है। वैसा करने का अर्थ है जीवन की विविधता का अपमान करना। हमें जीवन की विविधता और विरोधाभासों का अनुभव करना है ताकि हम इसे अधिक पूर्णता के साथ जी सकें।

वास्तव में, आज तंत्र ही वह एक मात्र आध्यात्मिक परम्परा है जिसने मानव मन तथा चेतना के साथ वैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए व्यावहारिक प्रयोग के क्षेत्र को जीवित और सक्रिय रखा है। तंत्र का मानना है कि कल्पना और आन्तरिक अनुभूतियों को यूँ ही संयोगवश प्रकट होने वाले मनोभावों पर,

जिनका अनुभव मनुष्य को समय-समय पर होता है, नहीं छोड़ देना चाहिए बल्कि उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार उत्पन्न किया जाना चाहिए। मनुष्य में विचार को उत्पन्न करने, उसका विकास करने और उसका मानस दर्शन करने तथा उसके बाद उसे समाप्त कर देने की योग्यता होनी चाहिए। आध्यात्मिक अनुभव और भौतिक जीवन की किसी भी इच्छा की पूर्ति का आधार यही है।

ऐसा करने के लिए तांत्रिक अभ्यासों में निर्धारित किये गये नियमों एवं आदेशों का अनुपालन करना होगा। तंत्र केवल इच्छित विचारों को अनुप्राणित करने के लिए प्रतीकों और मूर्तियों के विषय में नहीं बतलाता है, बल्कि यह भी बतलाता है कि आपको किस प्रकार बैठना चाहिए, आपको किस प्रकार श्वास लेनी चाहिए, क्या आपके कमरे में अँधेरा होना चाहिए, और किस क्षण किस विशेष प्रतीक का उपयोग करना चाहिए। यह सब किसी गुरु के निश्चित मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए।

पाप पुरुष की मूर्ति

तत्त्व शुद्धि में ध्यान का अभ्यास विचित्र प्रतीकों से भरा हुआ होता है। उनमें सबसे विचित्र पाप पुरुष की छवि है जो आपके अहंकार, आसक्ति, ईर्ष्या, घमंड इत्यादि के कारण आपकी पीड़ा और दु:खों का प्रतीक है। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के दौरान आप अपने शरीर के अन्दर उसके स्वरूप के पूर्ण रूपान्तर की कल्पना करते हैं, और उसके रूपान्तर के माध्यम से वस्तुत: आप स्वयं अपना रूपान्तर करते हैं। पाप पुरुष के इस रूपान्तर को नकारात्मक एवं सकारात्मक शक्तियों की ऊर्जा के बीच द्वन्द्व के आन्तरिक रूपान्तर के रूप में समझा जाना चाहिए जो तीसरी, निर्द्वन्द्वात्मक शक्ति में समरूपता और सन्तुलन उत्पन्न करने के लिए एकात्म होने के प्रयास में लगी हुई हैं।

पाप पुरुष के रूपान्तर को इसी आधार पर समझना चाहिए। द्वन्द्व और विसंगति का विचार, जो हमारे व्यक्तित्व और स्वभाव में दोष उत्पन्न करता है, जितना मनोवैज्ञानिक होता है उतना ही शारीरिक भी होता है। इड़ा एवं पिंगला की दो शक्तियाँ (मानसिक एवं प्राणिक शक्तियाँ) प्रत्येक प्राणी में अन्तर्निष्ठ हैं और उनके बीच निरन्तर परस्पर क्रिया होती रहती है। इन दोनों शक्तियों के बीच होने वाला असन्तुलन अन्तत: मानसिक और भावनात्मक क्षेत्रों को प्रभावित करता है या इसके विपरीत भी क्रिया होती है। इसलिए, पाप पुरुष का रूपान्तर केवल अपने पापों और अवगुणों को दूर करने की क्रिया नहीं है। यह शुद्ध रूप

से नैतिक व्याख्या है जिसकी कल्पना की जा सकती है। वास्तव में, यदि पाप को स्वीकार कर लेने से वह दूर हो जाता है, तो जीवन अत्यन्त सरल हो जायेगा।

पाप पुरुष का अर्थ पाप से भरा मनुष्य नहीं है, जैसा कि नैतिक और धार्मिक दृष्टि से समझा जा सकता है, बल्कि यह उन सबका प्रतीक है जो द्वन्द्वात्मक, असंगत और असन्तुलित है। संगति प्राप्त करने के लिए तंत्र द्वन्द्व का अनुभव करने पर बल देता है। ब्रह्माण्ड की द्वैत एवं विरोधी शक्तियाँ तंत्र का मौलिक सिद्धान्त हैं और हमें उनको ब्रह्माण्ड की आवश्यक घटना के रूप में समझना है।

तंत्र सृजन के हर स्तर पर द्वैत की बात करता है। उच्चतम स्तर पर शिव एवं शक्ति हैं। वे एक ही धारणा के दो पक्ष हैं, और इस तथ्य को अस्तित्व और अनुभव के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है– दिन और रात, सूर्य और चन्द्रमा, गर्म और ठंढा, प्रेम और घृणा। बिना दिन के रात का ज्ञान नहीं हो सकता है। हम दिन के अपने अनुभव के द्वारा ही रात का होना समझ पाते हैं जो इसके बाद आती है।

इड़ा/पिंगला की क्रिया भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। चन्द्रमा इड़ा का और सूर्य पिंगला का प्रतीक है। इड़ा का सम्बन्ध मानसिक ऊर्जा से है और पिंगला का प्राणिक ऊर्जा से। इड़ा शीतल है, पिंगला ऊष्ण है। अपने विरोधी गुणों के कारण उनके बीच एक प्रकार का तनाव उत्पन्न होता है और यह जीवन के विकास के लिए आवश्यक है।

यदि कोई तनाव या द्वन्द्व नहीं होता तो हम विकास नहीं कर पाते। हम तामसिक स्तर पर ही संतुष्ट और निष्क्रिय रह गये होते। हालाँकि, द्वन्द्व के कारण तनाव उत्पन्न होता है और इस तनाव के कारण हम हमेशा सन्तुलन कायम करने का प्रयास करते रहते हैं। सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हम आध्यात्मिक अनुभव की ओर जाते हैं और इस प्रकार हमारा विकास उच्चतर से उच्चतर होता जाता है।

इसलिए, वह छोटा सा विचित्र पुरुष जिसे हम अपने शरीर में उत्पन्न करते हैं, वह हमारे मन और शरीर के अन्दर शक्तियों के असन्तुलन का प्रतीक है। वह राक्षस या शैतान नहीं है। उसे यह प्रतीक दिया गया है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जो तत्त्व गहराई से जड़ जमाये हुए है, वह उसे प्रभावित करता है। पाप का विचार सामूहिक अचेतन का अंग है जो पूर्वजों के अतीत से उभर कर आया है और इसके प्रति प्रबल प्रतिक्रिया होती है।

पाप पुरुष की छवि को अभ्यास की उस अवस्था में निपुणतापूर्वक लाया जाता है जब आप एक साक्षी के रूप में अपने मन के एक भाग से अनासक्त होकर प्रत्येक क्रिया और विचार को देखते हुए अपनी प्रतिक्रियाओं का वस्तुनिष्ठ आकलन करते हैं। जब आप स्वयं को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखते हैं, तभी आप अपने व्यक्तित्व के उन पक्षों को देख पाते हैं जिन्हें आपके अहंकार ने आच्छादित कर रखा था ताकि आप अपने व्यक्तित्व के उस विकृत पक्ष से मुँह फेर लें जिसे आपको स्वीकार करने में लज्जा आ रही थी।

तंत्र में कहा गया है कि आपमें अपने वास्तविक स्वरूप को देखने की योग्यता होनी चाहिए, न कि उस स्वरूप को, जैसा आप दिखना चाहते हैं। आपमें वह क्षमता और इच्छाशक्ति होनी चाहिए जिससे आप अपने सामर्थ्य के साथ-साथ अपनी दुर्बलताओं का भी सामना कर पायें। यह तभी हो सकता है जब आप स्वयं को देखकर अपने लिए कुछ करने के विषय में विचार करें; यह देखना ऊपरी तौर पर या एक झलक में नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वयं को गहराई से वेधने वाली दृष्टि से होना चाहिए। तब आप स्वयं जान जायेंगे कि क्या करना चाहिए और वह समझ अन्दर की समझ है जिसे बिना अपने अन्दर गये हुए प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार, ऐसे अभ्यासों का विकास किया गया जिसमें साधक को अपने अन्दर देखना सिखाया गया। उनमें से कुछ अभ्यासों का सम्बन्ध अवचेतन और अचेतन मन से है। इसके लिए मण्डलों का प्रयोग किया गया क्योंकि मण्डल में वह शक्ति होती है जिससे वह मन के उन क्षेत्रों में जो कुछ विद्यमान रहता है, उसको आकर्षित करता है।

तत्त्व शुद्धि एक ऐसा अभ्यास है जिसमें उन मण्डलों की रचना होती है जिनका सम्बन्ध आपके व्यक्तित्व के दोनों भागों से होता है– एक अनुभवातीत और दूसरा अत्यन्त स्थूल। एक साधक के रूप में आपसे यह निर्णय लेने के लिए कहा जाता है कि आप किसके साथ एकात्म होना और स्वयं को सम्बद्ध करना चाहते हैं। यद्यपि आपको अपने अन्दर देखने के पहले कुछ ऐसे अभ्यास करवाये जाते हैं जिनसे शरीर का निम्नतम तत्त्व मन के उच्चतम तत्त्व के रूप में विकसित हो जाता है। और जब आप मन की उच्चतर अवस्था में स्थित हो जाते हैं तब आपको निर्णय लेने के लिए कहा जाता है, क्योंकि तब वह निर्णय वास्तविक निर्णय हो पायेगा। आप स्वयं को पाप पुरुष से सम्बद्ध करना चाहेंगे या देवी से; आपसे यह निर्णय लेने के लिए कहा जाता है।



पाप पुरुष

आपको स्थूल मन के द्वारा नहीं, बल्कि उच्चतर मन के द्वारा अपना मूल्यांकन करने के लिए कहा जाता है। यह आवश्यक है। तत्त्व शुद्धि में आपसे कहा जाता है कि जब तक आन्तरिक दृश्य स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हों तब तक प्रतीक्षा करें क्योंकि वह शक्ति अधिक प्रबल और यथार्थपूर्ण है।

इसलिए, अभ्यास के द्वारा आप मन की जिस अवस्था तक पहुँचे हैं, आप उसी के अनुसार चयन करते हैं। यदि आपका अभ्यास आपको अन्तर की गहराई में ले जाता है तो आप स्वयं को देवी के साथ सम्बद्ध करते हैं, लेकिन यदि यह आपको उतनी ऊँचाई पर ले जाने में असमर्थ है तो आप स्वयं को स्थूल स्तर, अर्थात् पाप पुरुष के साथ सम्बद्ध करते हैं। यह सब इस पर निर्भर करता है कि आप कितनी गहराई में जाने में समर्थ हैं। तत्त्व शुद्धि का अभ्यास आपको पृथ्वी, अपस्, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों के प्रति सजग करता हुआ यह दर्शाता है कि ये केवल प्रभावित (कार्य) करते हैं, ये कारण नहीं हैं। जब तक आप कारण तक नहीं पहुँच पाते हैं तब तक आप अपने अस्तित्व के स्रोत को नहीं ढूँढ पायेंगे। उत्तर वहीं छुपा है।

14

भस्म– अग्नि-स्नान

भस्म लगाना तत्त्व शुद्धि साधना का एक अभिन्न अंग है, क्योंकि यह भौतिक के साथ-साथ सूक्ष्म और कारणात्मक क्षेत्रों के शुद्धिकरण का प्रतीक है। महायोगी शिव, जिन्हें तंत्र का प्रणेता माना जाता है, उनका भस्म लगे हुए निर्वस्त्र शरीर वर्णन मिलता है। इसलिए अपनी शिव-प्रकृति को उद्घाटित करने के लिए इसे एक शुभ क्रिया माना जाता है।

भस्म का मूल अर्थ है 'विघटन'। कोई भी पदार्थ अग्नि या जल इत्यादि के द्वारा विघटित होकर जिस अवशिष्ट रूप में आ जाता है उसे 'भस्म' कहते हैं। इसे अपने मूल पदार्थ से कहीं अधिक शुद्ध माना जाता है। इस प्रकार, विघटन की प्रक्रिया के द्वारा सभी अशुद्धियों से मुक्त होकर पदार्थ का सत्त्व प्रकट हो जाता है।

विघटन की यह प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह वस्तुनिष्ठ सजगता के विघटन में होने वाले अनुभव के समरूप होती है। यही तत्त्व शुद्धि में भी होता है। जिस प्रकार हम बाह्य रूप से पदार्थ को भस्म में परिणत कर देते हैं, उसी प्रकार हम तांत्रिक अभ्यास की 'अग्नि' का उपयोग उस सत्त्व को प्रकट करने के लिए करते हैं, जो अपने सभी सूक्ष्म अभिव्यक्तियों के साथ इस शरीर/मन में प्रकट होता है। इस विघटन के परिणामस्वरूप आन्तरिक अनुभव होता है।

पदार्थ को अपनी मूल प्रकृति को प्रकट करने के लिए अनेक अवस्थाओं में विघटित होना पड़ता है और हर अवस्था में उसका अवशेष अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत होता जाता है। उसी प्रकार, हम अपने वस्तुनिष्ठ अस्तित्व को पूर्णतः विघटित करने के लिए अनेक अवस्थाओं की यात्रा करते हैं ताकि

उस सत्त्व का अनुभव प्राप्त हो, जो छिपा हुआ रहता है। ये अवस्थाएँ, जो प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के रूप में जानी जाती हैं, ऐसी अनुभूति उत्पन्न करती हैं जो धीरे-धीरे सूक्ष्मतर होती जाती है। इसकी पराकाष्ठा समाधि की सुगन्ध में होती है जो अन्तिम परिणति है।

पदार्थ की स्थूलता उसमें निहित सूक्ष्म सत्त्व को आच्छादित किये रहती है। इस प्रकार, शुद्धिकरण की सभी प्रक्रियाओं में विघटन बाह्य हो या आन्तरिक वह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। शुद्धिकरण का अर्थ है सारी अशुद्धियों को बाहर निकालना, बाहर से किसी तत्त्व को मिलाना नहीं। इसलिए, भस्म लगाना प्रतीकात्मक है, यह उस प्रक्रिया के पूर्ण होने का प्रतीक है जिसके द्वारा आपकी आन्तरिक सजगता पदार्थ से यात्रा करती हुई शुद्ध चेतना तक जाती है। इसके साथ ही, यह जीवन की क्षणभंगुरता का भी प्रतीक है; जैसा कि बाइबल में कहा गया है, "धूल से धूल तक, राख से राख तक..."।

भारत में पुन: जीवन प्रदान करने वाली प्राचीनतम और व्यापक चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद में भस्म का प्रयोग ओषधि के रूप में होता है। सोने, चाँदी, ताँबा या कोई भी अन्य धातु जिसमें उपचारात्मक गुण है, उसका भस्म बनाया जा सकता है। हालाँकि तत्त्व शुद्धि के अभ्यास के लिए गाय के गोबर से भस्म तैयार किया जाता है। गोबर संस्कृत का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'गाय से प्राप्त हुआ उपहार' होता है। भारत के गाँवों में स्त्रियाँ गोबर से उपले या गोइठे बनाती हैं। इन्हीं से भस्म बनता है।

भारत में गोबर का अनेक प्रकार से प्रयोग होता है। इसकी अनेक विशेषताएँ बहुत से रोगों को दूर करने में वरदान के समान हैं। वास्तव में अधिकांश जानवरों के, और यहाँ तक कि मानव मल रोगों और जीवाणु संक्रमण के स्रोत होते हैं। जबकि वैज्ञानिक विश्लेषण से यह पाया गया है कि गाय का गोबर न केवल विषाणु एवं संक्रमणमुक्त होता है, बल्कि इसमें ऐसे उपयोगी हॉरमोन होते हैं जिनमें जीवाणुओं को समाप्त करने का गुण होता है। अनेक दक्षिण अमेरिकी देशों में जानवरों के विषाणुजन्य एक रोग (फ़ूट ऐन्ड माउथ) के इलाज के लिए गोबर के मिश्रण का उपयोग किया जाता है और यह मिश्रण महामारी से लड़ने में सहायक सिद्ध हुआ है।

यदि आप गोबर की स्वास्थ्यकर और गूढ़ विशेषताओं से आश्वस्त नहीं हैं तो आप इस अभ्यास को पूरी तरह बन्द कर दें। यहाँ इसका उल्लेख करना आवश्यक है कि अपने दैनिक जीवन में आप गर्व और पूरे विश्वास के साथ

जिन उपकरणों का उपयोग करते हैं वे हानिकारक और सांस्कृतिक रूप से खतरनाक हैं, आप वैज्ञानिक आधार पर उन पर कोई प्रश्न नहीं करते हैं। यहाँ तक कि दवाएँ भी अपवाद नहीं हैं, वे भी प्राय: हानिकारक तत्त्वों से बनायी जाती हैं। गोबर की तुलना इन तथाकथित दवाओं और सौन्दर्य प्रसाधनों से नहीं की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, भस्म का उपयोग मानव अस्तित्व के भौतिक आयाम तक ही सीमित नहीं होता है, बल्कि इसके प्रभाव को चेतना के सूक्ष्म एवं कारणात्मक क्षेत्रों में भी अनुभव किया जा सकता है। योग की भाषा में गो का अर्थ होता है इन्द्रियाँ। इसीलिए गोपाल, जो श्रीकृष्ण का एक नाम है, का अर्थ होता है 'इन्द्रियों की रक्षा करने वाला'। कृष्ण के दूसरे नाम गोविन्द का शाब्दिक अर्थ होता है 'इन्द्रियों का स्वामी'। इसी प्रकार, गोचर शब्द, जिसका प्रयोग गऊओं के चरने के स्थान के लिए होता है, लेकिन उसका शाब्दिक अर्थ होता है 'इन्द्रियों का क्षेत्र', जहाँ वस्तुनिष्ठ अनुभव होते हों।

विभिन्न प्रतीकों से 'गो' या 'गोमाता' शब्द उत्पन्न हुआ जिसका अर्थ होता है 'इन्द्रियों की स्रष्टा' जिसे हमने पहले भी देखा है, वह और कोई नहीं बल्कि प्रकृति है। 'गो' या 'गोमाता' शब्द से ही गाय शब्द बना। इसीलिए भारत में गाय को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है और गाय के गोबर को गो-माया कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ 'गाय से प्राप्त हुआ उपहार' होता है।

यही कारण है कि गोबर के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ का उपयोग तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में नहीं किया जाता है; यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। अग्नि के द्वारा गोबर को विघटित कर हम अवशेष के रूप में भस्म प्राप्त करते हैं, जो इन्द्रियों के विघटन का प्रतीक होता है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि तत्त्व शुद्धि में हम यही करने का प्रयास करते हैं। प्रत्याहार के द्वारा हम वस्तुनिष्ठ जगत या इन्द्रियों के अनुभवों का विघटन करते हैं, धारणा के माध्यम से हम अवशिष्ट अनुभव को केन्द्रित करते हैं जिससे यह सूक्ष्म रूप में आ जाता है, और ध्यान के द्वारा हम सूक्ष्म अनुभवों को विघटित कर मूल ब्रह्माण्डीय तत्त्व या शिव चेतना प्राप्त करते हैं। गोबर का भस्म में रूपान्तर और उस अवशेष को शरीर पर मलना, उस प्रक्रिया के समतुल्य है जिसे हम तत्त्व शुद्धि के माध्यम से करने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार, बाह्य और गुह्य, दोनों अभ्यासों के महत्त्व पर बल दिया गया है।

अभ्यास के दौरान मंत्रों के साथ विशेष प्रकार से भस्म को कपाल पर लगाया जाता है। गृहस्थों एवं संन्यासियों के लिए भिन्न-भिन्न मंत्र हैं। भस्म लगाने की क्रिया अभ्यास के अन्तिम चरण में होती है और जिन लोगों ने इसका उपयोग किया है, उनका अनुभव है कि यह साधक को शुद्धिकरण की गहरी अनुभूति से भर देता है।

आध्यात्मिक स्तर पर भी भस्म को प्रकृति की उच्चतर शक्तियों को आकर्षित करने के लिए लगाया जाता है। भारत में हम अनेक साधुओं और योगियों को शरीर में भस्म लगाये हुए देखते हैं, उसका यही उद्देश्य है। शिव पुराण के साथ-साथ श्रीमद् देवी भागवतम् में कहा गया है कि जो लोग मोक्ष की कामना करते हैं उन्हें भस्म लगाना चाहिए और रुद्राक्ष की माला पहननी चाहिए।

यद्यपि भस्म लगाने का जो वास्तविक प्रभाव होता है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है; इस अभ्यास का अनुभव व्यक्तिगत रूप से होना चाहिए। शब्द अवरोधक होते हैं, उनका विकास तर्क के आधार पर हुआ है, जबकि अनुभव कभी-कभी तर्क को भी परिभाषित कर देता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भस्म का प्रयोग और उसका परीक्षण अनेक योगियों एवं ऋषियों द्वारा किया गया है और इसके लाभ को सबने प्रमाणित किया है। इसीलिए आज तक इसका उपयोग होता आया है। योग शरीर और मन की पूर्ण वैज्ञानिक पद्धति के रूप में प्रमाणित हुआ है, और इसकी सम्भावना कम ही है कि भस्म का उपयोग करने वाले व्यक्ति पर यदि वांछित प्रभाव नहीं होता तो योग इसे स्वीकार करता या इसे लगाने की बात करता।

भस्म को तैयार करना

चूँकि भस्म लगाना तत्त्व शुद्धि का एक आवश्यक अंग माना गया है, इसलिए इसे तैयार करने की विस्तृत विधि का वर्णन नीचे दिया जा रहा है। भस्म को अभ्यास के कुछ दिन पहले बना लेना चाहिए और एक डब्बे में बन्द करके उपयोग के लिए तैयार रखना चाहिए।

प्रथम चरण

1. गाय का गोबर लेकर उससे मध्यम आकार के कई उपले या गोइठे बनायें।
2. धूप में उन्हें अच्छी तरह सुखा लें।

3. जब वे अच्छी तरह सूख जायें तो एक बड़े बर्तन में रख कर एक-दो उपलों में अग्नि प्रज्वलित करें। अन्य उपलों तक भी अग्नि फैल जायेगी। सबको एक साथ न जलाएँ क्योंकि उन्हें धीरे-धीरे धीमी आँच पर जलना चाहिए। यह बाहर खुले स्थान में किया जाना चाहिए क्योंकि इससे बहुत धुआँ निकलता है।
4. जब वे पूरी तरह जल जायें तो उन्हें ठंढा होने दें।
5. उसके बाद उन्हें एकत्रित कर महीन कपड़े से छान लें। यह अवशेष भूरे काले रंग की धूल होगी, यही भस्म है।
6. यह प्रथम चरण का अन्त है और भस्म उपयोग करने के लिए तैयार है। हालाँकि, जो लोग अधिक शुद्ध और सुगन्धित भस्म का उपयोग करना चाहते हैं, उनके लिए एक और चरण है।

द्वितीय चरण

1. प्रथम चरण से प्राप्त हुए कुछ अवशेष को लें और उसमें गाय का दूध और घी मिलायें।
2. इनसे एक चिकना मिश्रण तैयार कर लें, ध्यान रहे कि मिश्रण अधिक पतला न हो जाये, उसके बाद उस मिश्रण से मध्यम आकार के कई गोले बना लें।
3. इन्हें कई दिनों तक सूखने के लिए छोड़ दें और जब ये पूरी तरह सूख जायें तो प्रथम चरण के समान इन्हें जलाएँ।
4. अवशेष को महीन कपड़े से छान लें। इस बार यह अवशेष अधिक महीन होगा और उसका रंग भी हल्का होगा।



5. द्वितीय चरण को ग्यारह बार दोहराया जा सकता है, हर बार दूध और घी को मिलाना होगा। हर बार अवशेष अधिक महीन और उजला होता जायेगा और इसकी सुगन्ध किसी भी महँगे परफ्यूम के समान होगी।
6. अन्तिम चरण के बाद भस्म को एक डिब्बे में बन्द कर देना चाहिए ताकि उसकी सुगन्ध न उड़ जाये।

गोबर को ग्यारह बार जलाने का महत्त्व यह है कि यह संख्या शिव चेतना की संख्या के बराबर है जो ग्यारह है और इसलिए गोबर को ग्यारह बार जलाने से अवशेष उतना ही सूक्ष्म और सुगन्धित हो जाता है जितना शुद्ध चेतना का अनुभव।

15

तत्त्व शुद्धि साधना का अभ्यास

जैसा कि श्रीमद्देवी भागवतम् में तत्त्व शुद्धि की उपयुक्त साधना के लिए कहा गया है, इसे गुरु के मार्गदर्शन में निश्चित अवधि के लिए एक संकल्प के साथ करना चाहिए। यह संकल्प बारह, छः या तीन वर्षों, या एक वर्ष, छः महीनों, बारह, छः, तीन या कम-से-कम एक दिन के लिए लिया जा सकता है। इसके लिए आप जो अवधि चुनते हैं, उसे संकल्प पूरा करने की आपकी क्षमता, इच्छाशक्ति और मानसिक दृढ़ता पर आधारित होनी चाहिए। एक बार जब संकल्प ले लिया गया है, तब इसे कभी टूटने नहीं देना चाहिए। इसलिए इसे प्रारम्भ करने से पूर्व अच्छी तरह सोच-समझ कर निर्णय लेना चाहिए।

अभ्यास को वर्ष के किसी भी समय में प्रारम्भ किया जा सकता है। यद्यपि अधिक फलदायी परिणामों के लिए इसे श्रावण या आश्विन में प्रारम्भ करने का परामर्श दिया जाता है। आश्विन को देवी की उपासना के लिए विशेष मास माना जाता है, इसलिए इस अवधि में यह अभ्यास विशेष रूप से शुभ होता है।

पहली महत्त्वपूर्ण बात जिस पर साधक को ध्यान देना चाहिए, वह है उसका भोजन। किसी भी लम्बी अवधि के ध्यान के लिए विभिन्न कारणों से भोजन महत्त्वपूर्ण होता है। सबसे पहले, शरीर के चय, चयापचय और अपचय की दरों में परिवर्तन आ जाता है, इसलिए उसके अनुरूप भोजन में भी परिवर्तन होना चाहिए। गरिष्ठ भोजन को पचाने में कठिनाई होती है और यह उच्चतर ऊर्जा के स्पन्दनों की स्वाभाविक संवेदनशीलता और ग्राह्यता को बाधित करने लगता है। गरिष्ठ भोजन शरीर और मन, दोनों

को सुस्त कर देता है। इसलिए, अभ्यास की गम्भीरता के अनुसार भोजन में परिवर्तन लाना चाहिए।

यदि कुछ दिनों की गहन साधना की जा रही है, तब भोजन में दिन में केवल एक बार फल और दूध या दही लेना चाहिए। नमक, मसाला या कोई पेय भोजन के साथ नहीं लेना चाहिए क्योंकि वे पाचन प्रणाली को उत्तेजित कर देते हैं जिससे अति अम्लता उत्पन्न हो सकती है और चयापचय की दर तथा हृदय गति में वृद्धि हो सकती है। भूख, कमज़ोरी और आलस्य के सामान्य अनुभव से बचने के लिए अभ्यास के कुछ दिनों पूर्व से ही फल, दूध और उबली हुई सब्ज़ियों वाला हल्का भोजन लेना आरम्भ कर देना चाहिए। इस प्रकार उदर पहले से ही तैयार रहेगा और अभ्यास की अवधि में नियन्त्रित भोजन के लिए सुगमतापूर्वक अनुकूलित हो जायेगा।

अपने हठ योग, क्रिया योग या कुण्डलिनी योग के अभ्यासों के बाद, या अपनी दैनिक पूजा या अनुष्ठान के बाद तत्त्व शुद्धि साधना को दैनिक अभ्यास के रूप में करने पर अपनी आजीविका और पारिवारिक परिस्थितियों में कठोर नियमों के साथ भोजन को नियन्त्रित रख पाना सम्भव नहीं होगा। ऐसे में साधना के लिए जो उपयुक्ततम परिस्थिति उपलब्ध हो, उसी में इसे जारी रखा जा सकता है।

इस अभ्यास को करने के इच्छुक साधकों को अल्प भोजन के विचार से घबराना नहीं चाहिए। वास्तव में, हमें यह समझना चाहिए कि प्राण हमारे शरीर को ऊर्जा और भोजन प्रदान करता है। हम प्राण के द्वारा ही जीवित रहते हैं, श्वास लेते हैं और गतिशील रहते हैं। वह व्यक्ति जिसमें प्राण की कमी है, उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता है, भले ही वह उत्तम चिकित्सक की सलाह पर अत्यन्त पौष्टिक भोजन ग्रहण कर रहा हो। बिना प्राण के वह भोजन को न तो पचा पायेगा और न ही उसका स्वीकरण कर पायेगा। इसलिए, कुछ दिनों तक फल और दूध का सेवन उसके लिए हानिकारक नहीं होगा, बल्कि यह उसके लिए श्रेयस्कर ही रहेगा।

तत्त्व शुद्धि के द्वारा प्राण का स्तर बढ़ता है और पूरे शरीर में उसका प्रसार होता है। वस्तुत:, यदि इसे सही ढंग से किया गया तो उपवास के बावजूद साधक का वजन बढ़ सकता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि असल बात यह नहीं कि आप कितना खाते हैं, बल्कि महत्त्वपूर्ण यह है कि आपका शरीर कितना स्वीकरण कर सकता है। जब शरीर में प्राणिक

व्यवस्था का जीर्णोद्धार हो जाता है तब स्वीकरण एवं पाचन की प्रक्रिया स्वत: सही ढंग से कार्य करने लगती है।

श्रीमद् देवी भागवतम् में इस बात पर बल दिया गया है कि अभ्यास के पूर्व मुंडन करवा लेना चाहिए क्योंकि ध्यान के गहन अभ्यासों के दौरान शरीर का ताप बढ़ जाता है और उसे बाहर निकलने के लिए उपयुक्त मार्ग की आवश्यकता होती है। यदि केश लम्बे होते हैं तो वे ताप को बाहर निकलने में बाधा उत्पन्न करते हैं जिसके कारण त्वचा में यहाँ-वहाँ फफोले हो जाते हैं या शरीर का कोई अंग अतितप्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए मुंडन करवाना सम्भव नहीं हो सकता है, लेकिन जिनके लिए कोई निषेध नहीं हो उन्हें मुंडन करवाने का प्रयास करना चाहिए।

साधना के समय बिना सिला हुआ वस्त्र पहनना भी अच्छा होता है, जैसा संन्यासी पहनते हैं। वस्त्र उजला या गेरू हो सकता है। अचेतन मन पर इन रंगों का गहरा प्रभाव पाया गया है। आप स्वयं पायेंगे कि ये आध्यात्मिक अनुभवों के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। बिना सिले हुए वस्त्र वैराग्य के प्रतीक हैं जिसे सन्त-महात्माओं ने उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए उस मानसिक अवस्था को आवश्यक माना है। यहाँ तक कि राज योग के महान प्रणेता पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में स्पष्ट रूप से कहा है कि वैराग्य वह मूल धारणा है जिसके माध्यम से मन एकाग्रता प्राप्त कर सकता है।

इसलिए, वैराग्य की उदात्त धारणा का विकास बाह्य के साथ-साथ आन्तरिक अभिवृत्तियों में भी होना आवश्यक है, यदि यह हमेशा सम्भव नहीं हो तो कम-से-कम साधना के दौरान अवश्य हो। आपमें से जो साधना के दौरान इस अनुभव को पाना चाहते हैं, उन्हें बताये गये वस्त्र को पहन कर यह प्रयोग करना चाहिए।

हालाँकि, यहाँ जितने नियम बताये गये हैं, हो सकता है उनमें से अधिकतर व्यर्थ प्रतीत हो रहे हों, और पाठक को ये अनावश्यक बाह्याचार मालूम पड़ रहे हों, फिर भी वे इस लायक हैं कि बिना उन पर ध्यान दिये हुए उन्हें अस्वीकार करने के पहले एक बार उनका अभ्यास किया जाये। बाह्याचारों और अनुष्ठानों का हम पर उससे कहीं अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है जितना हम समझते या मानते हैं। वे हमारे मन के उन क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं जहाँ हम साधना के द्वारा पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं और, चूँकि वे क्षेत्र तर्क से परे हैं, इसलिए यह कह पाना कठिन है कि प्रभाव कैसा होगा। अत: अभी इतना

ही कहा जा सकता है कि ये नियम हमारे आध्यात्मिक संस्कारों को अन्दर से प्रकट होने के लिए प्रेरित करते हैं।

इसके अतिरिक्त, आन्तरिक अनुभूति की खोज करते हुए एक साधक के रूप में यह आवश्यक है कि आपके मन पर समाज द्वारा आरोपित विचारों और आदतों से आप स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करें। समाज ने आपमें एक विशेष प्रकार से जीने, खाने, सोने, वस्त्र पहनने और विचार करने की आदत डाल दी है, लेकिन आपने यह कभी नहीं सोचा है कि ये आदतें आपके आध्यात्मिक विकास के विरुद्ध कार्य करती हैं क्योंकि ये राग और द्वेषों का आधार हैं, जैसे आसक्ति, पसन्द-नापसन्द।

पारम्परिक आवश्यकताएँ

पारम्परिक रूप से तत्त्व शुद्धि को दिन में तीन बार करना चाहिए; ब्रह्ममुहूर्त (प्रात: 4-6 बजे) में, दोपहर में और सन्ध्या में। प्रत्येक अभ्यास के पूर्व आपको स्नान करके स्वयं को अच्छी तरह स्वच्छ कर लेना चाहिए। अभ्यास के लिए आपको ऐसा स्थान चुनना चाहिए, एक ऐसा कमरा जहाँ लोगों का आना-जाना नहीं होता हो। कमरे में अधिक सामान नहीं हो और हर अभ्यास के पहले उसे अच्छी तरह साफ कर लिया जाये। अभ्यास के लिए आवश्यक वस्तुओं में एक आरामदायक आसनी, दीपक, धूप या अगरबत्ती, फूल, प्रसाद के लिए खाद्य सामग्री (कुछ मीठा– उसे यदि आपने बनाया हो तो उत्तम होगा) और भस्म लगाने के लिए एक बर्तन में जल। भस्म पहले से तैयार करके एक डिब्बे में रखी जाये।

नियत किये गये दिन को आपको सुबह जल्दी उठकर स्नान कर लेना चाहिए और अभ्यास के लिए उत्तर या पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाना चाहिए। अभ्यास आरम्भ करने से पहले दीपक और अगरबत्ती को जला लें और मानसिक रूप से अपने संकल्प को दुहरायें। इसके बाद आप अभ्यास आरम्भ करें और इसे इसी प्रकार दिन में तीन बार निर्धारित दिनों तक जारी रखें। अन्तिम दिन मौन का अभ्यास करें और सन्ध्या काल में निराकार पर विशेष ध्यान करें।

नियमित ध्यान के अभ्यास के रूप में तत्त्व शुद्धि

तत्त्व शुद्धि का अभ्यास दो प्रकार से किया जा सकता है, या तो वर्ष में कम-से-कम एक बार निर्धारित दिनों तक गहन साधना के रूप में, या हठ योग,

क्रिया योग या किसी अन्य प्रकार के तांत्रिक ध्यान के साथ प्रतिदिन। जो लोग अभी भी ध्यान की एक विधि की खोज में लगे हुए हैं, उनके लिए यह प्रारम्भ करने की उत्तम विधि होगी क्योंकि तत्त्व शुद्धि तंत्र तथा योग के बाह्य और गुह्य अभ्यासों के लिए एक सेतु का काम करता है।

यदि गहन साधना नहीं की जा रही है तो उपवास, भोजन और इसी प्रकार के अन्य नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना आवश्यक नहीं है। ऐसे में इसका अभ्यास दिन में एक बार ही करना है। हालाँकि उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने के लिए अभ्यास के समय बाह्य अनुष्ठानों के लिए दीपक और अगरबत्ती जला सकते हैं।

प्रतिदिन एक निश्चित समय और स्थान पर ही ध्यान करना चाहिए। नियमित समय एक अनिवार्य नियम है, क्योंकि इससे शरीर और मस्तिष्क के अन्दर स्वत: सहज रूप से एक विशेष तरंग उत्पन्न होने लगती है। कुछ समय ऐसे हैं जो आध्यात्मिक अभ्यासों के लिए अधिक अनुकूल हैं; मुख्यत: प्रात: 4 और 6 के बीच तथा रात्रि में सोने से पहले। जो निर्भीक हैं वे इसका अभ्यास आधी रात के समय भी कर सकते हैं।

तत्त्व शुद्धि का अभ्यास यंत्र या मण्डल के ध्यान के पहले विशेष रूप से प्रभावकारी होता है। वस्तुत: तंत्र में यंत्र एवं मण्डल पूजा से पहले प्रारम्भिक अनुष्ठान के रूप में इस पर बल दिया गया है। तत्त्व शुद्धि साधना के द्वारा साधक भौतिक सजगता के परे चला जाता है और उसके अन्दर जो उच्चतर शक्तियाँ जाग्रत होती हैं; वह यंत्र या मण्डल में उनका आवाहन करता है, जिसके बाद यंत्र या मण्डल की अन्तर्निष्ठ शक्ति प्रकट होने लगती है।

तत्त्व शुद्धि के अभ्यास को शुद्धिकरण की एक प्रक्रिया के रूप में धीरे-धीरे आपके दैनिक जीवन का अंग बन जाना चाहिए। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रतिदिन अपने दाँतों को साफ करना और स्नान करना आवश्यक है, उसी प्रकार तत्त्व शुद्धि साधना को मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए नियमित क्रिया के रूप में अपनाया जाना चाहिए। यदि आप प्रतिदिन स्नान नहीं करें तो आपके शरीर पर गंदगी जमा हो जायेगी, उसी प्रकार आपके अस्तित्व के सूक्ष्म स्तरों पर संस्कारों के रूप में गंदगी जमा होती रहती है। यदि उन पर ध्यान नहीं दिया गया तो आपका सम्पूर्ण जीवन उससे प्रभावित होगा। जिस प्रकार आप अपनी मोटरकार की मरम्मत करते हैं उसी प्रकार शरीर

और मन के सूक्ष्म तत्त्वों का जीर्णोद्धार होना आवश्यक है। शुद्धिकरण की इस प्रक्रिया के बाद ही स्थिति में पूर्णता सम्भव होती है।

गहन साधना के लिए मार्गदर्शन

किसी भी लम्बी साधना के लिए मानसिक अभिवृत्ति का विशेष महत्त्व होता है। गहन साधना के दौरान अवधारणा अत्यन्त संवेदनशील हो जाती है और साधक के अन्दर मानसिक स्पष्टता तथा अद्भुत आत्मिक शक्ति का विकास हो जाता है। इस शक्ति का सही और सृजनात्मक ढंग से उपयोग होना चाहिए। यदि आप सावधान नहीं रहे तो वही शक्ति नकारात्मक हो जाती है और साधना के द्वारा आपने जिस क्षमता और अनुभूति को प्राप्त किया है वह उन्हीं को नष्ट कर देती है। अभ्यास के दौरान प्रबल भावनाएँ उठ सकती हैं, अशान्त करने वाले विचार परेशान कर सकते हैं, छोटी-छोटी घटनाएँ आपको खिन्न कर सकती हैं या चिड़चिड़ा बना सकती हैं, लेकिन आपमें इतनी सामर्थ्य और इतना उत्साह होना चाहिए कि आप उन सबके बावजूद शान्त बने रहें।

आप स्वयं से कहें कि कम-से-कम संकल्प की अवधि में भी आप घटनाओं से स्वयं को अप्रभावित रखते हुए अपना सन्तुलन बनाये रखेंगे। आप एक साक्षी के रूप में दिन के प्रत्येक क्षण का अवलोकन करने का प्रयास करें। मानसिक रूप से स्वयं को अनासक्त कर लें और आपकी मानसिक स्थिरता पर सीधा प्रहार करने वाली भावनाओं, अनुभवों तथा कुंठाओं से उलझने के बदले देखें कि आपके मन में क्या चल रहा है। साक्षी भाव आने के बाद ही संस्कारों के समाप्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और भावनाओं की शक्ति को सृजन करने का मार्ग मिलता है जिससे आन्तरिक अनुभव उत्पन्न होते हैं।

मौन भी एक सहायक अभ्यास है जिसे गहन साधना के दौरान किया जाना चाहिए। जिस प्रकार उपवास भौतिक शरीर को स्वच्छ करता है उसी प्रकार मौन मन को शुद्ध करता है। अनावश्यक बातचीत मन को बहिर्मुख कर देते हैं जिससे आन्तरिक अनुभव नष्ट हो सकता है, लेकिन मौन के द्वारा आप अपनी आन्तरिक सजगता को तीव्रतर कर सकते हैं। आप अन्दर जायें और शरीर, मन और चेतना की सूक्ष्म गतिविधियों के साक्षी बनें। साधक को कम-से-कम एक दिन मौन करने का परामर्श दिया जाता है।

मौन, उपवास और गहन साधना से यह नहीं समझना चाहिए कि आपको निष्क्रिय हो जाना चाहिए। इसके विपरीत, आपको निश्चित रूप से कुछ कार्य करने चाहिए, आराम तभी करें जब यह नितान्त आवश्यक हो। वास्तव में, जब आप गहन साधना के रूप में तत्त्व शुद्धि कर रहे हों तो आपको शारीरिक या मानसिक रूप से बेकार नहीं रहना चाहिए, बल्कि आपको अपने कार्य सामान्य रूप से करने चाहिए और यह प्रयास होना चाहिए कि आप सामान्य से अधिक कार्य करें। यह मन को व्यस्त रखता है और अनावश्यक विचारों से बचाता है जो मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ देता है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप अपनी पहले से चल रही साधना को बन्द कर दें। यदि आप हठ योग, क्रिया योग या कोई अन्य साधना कर रहे हैं तो उन अभ्यासों को जारी रखें। दोनों साधना को परस्पर मिला देने से बेहतर परिणाम प्राप्त होंगे।

सोने के समय को भी नियमित करने की आवश्यकता है। तत्त्व शुद्धि की गहन साधना की अवधि में कम-से-कम पाँच घंटे और अधिक-से-अधिक सात घंटे सोना चाहिए। योग में सबसे पहली बाधा आती है नींद के रूप में, क्योंकि मन जब अन्तर्मुखी होता है, तो सबसे पहले शिथिलता आती है और इससे कुछ क्षणों के लिए सुस्ती और नींद आ जाती है। वास्तव में, कभी-कभी जागते रहना कठिन हो जाता है। अभ्यास के बीच में आप स्वयं को नींद से झुकता हुआ पाते हैं। यही कारण है कि अभ्यास के पहले स्नान (ठंढा पानी बेहतर है) करना आवश्यक होता है। फिर भी, यदि आप देखते हैं कि आप जगे हुए नहीं रह सकते हैं तो अपने चेहरे पर पानी का छींटा मारें और अपना अभ्यास आरम्भ करें, यदि एकाग्रता भंग हो गयी हो तो अभ्यास को पुन: आरम्भ करें।

साधना के मार्ग की बाधा, बुद्धि

तंत्र और योग के शास्त्रों में बार-बार यह कहा गया है कि आध्यात्मिक साधना के लिए साधक को सभी बौद्धिक अवरोधों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। आप जब तक अपनी साधना को तर्क और विश्लेषण की दृष्टि से देखते रहेंगे तब तक आपके अनुभव प्रकट नहीं होंगे। आप मन के जिस स्तर पर पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं, वह बौद्धिक हस्तक्षेप के परे होता है। कुछ इस प्रकार के प्रश्न कि “मैं यह साधना क्यों कर रहा

हूँ?", "इन दृश्यों का क्या अर्थ है?", "क्या मैं प्रगति कर रहा हूँ?", "ये सभी अनुभव कहाँ से आ रहे हैं?", "ये सब मुझे कहाँ ले जायेंगे?"– सब के अन्दर उठते हैं। फिर भी, इस प्रकार की बौद्धिक उछल-कूद से बचकर रहना है।

भौतिक संसार में अपने दैनिक जीवन में अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य करें, क्योंकि वहाँ इसकी आवश्यकता है। जबकि साधना में वही क्षमता बाधक बन जाती है और अवरोध उत्पन्न करती है। इसीलिए श्रीअरविन्द ने कहा है, "बुद्धि सहायक थी, बुद्धि ही बाधा है; बुद्धि के पार जाओ।" सभी साधकों को यह कथन स्मरण रखना चाहिए। एक सीमा तक बुद्धि आवश्यक होती है; बुद्धि की सही-गलत को पहचानने की क्षमता के द्वारा ही आपने योग का अभ्यास आरम्भ किया। हालाँकि अब इससे ऊपर जाने के लिए इसको लाँघना होगा। हमेशा ऐसा सम्भव नहीं भी होता है, लेकिन गहन साधना की अवधि में इसे किसी भी तरह कायम रखना चाहिए।

विश्वास, प्रेम और भक्ति ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा उच्चतर अनुभूतियाँ प्रकट होने लगती हैं, क्योंकि ये गुण बुद्धि की तीखी और तर्कपूर्ण गणनाओं को निरस्त कर देते हैं। इसलिए हमें बुद्धि की कठोरता के साथ नहीं, बल्कि भक्ति के रूपान्तरकारी भाव के साथ साधना करनी चाहिए। श्रीमद् देवी भागवतम् में देवी कहती हैं कि ज्ञान और भक्ति उनकी ओर ले जाने वाले दो मार्ग हैं। विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा अपनी प्रगति को अवरुद्ध करने का प्रयास नहीं करें। उन प्रवृत्तियों को त्याग दें जो सभी सामान्य लोगों में होती हैं। सजगता को भक्ति के द्वारा बौद्धिक बाधाओं से ऊपर ले जाकर शुद्ध अनुभव के क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयास करें।

तत्त्व शुद्धि का अभ्यास

तत्त्व शुद्धि का उल्लेख विभिन्न तंत्र शास्त्रों में किया गया है, क्योंकि यह तांत्रिक साधना का अभिन्न अंग है। हालाँकि उनमें वर्णित विधियाँ प्राय: गूढ़ होती हैं और एक सामान्य साधक के लिए उन्हें समझ पाना कठिन होता है। कुछ शास्त्रों में कहा गया है कि साधक को अन्तर्कुम्भक करते हुए पृथ्वी तत्त्व पर पाँच घटिका (दो घंटे) तक ध्यान करना चाहिए; अन्तर्कुम्भक के साथ अपस् तत्त्व पर दस नाड़िका (चार घंटे) तक ध्यान करना चाहिए, इसी प्रकार अन्तिम तत्त्व तक कई घंटों का ध्यान करना होता है।

यह सरलता से देखा जा सकता है कि जो योगी नही हैं, वह उन शास्त्रों में वर्णित अभ्यास के न्यूनतम अंश को भी कर पाने में असफल होगा। यही कारण है कि यहाँ दिये गये अभ्यास को औसत व्यक्ति के, जिसके पास लम्बी साधना के लिए न समय है और न ही शक्ति, लाभ के लिए सरल बना दिया गया है। साधना के विवरण का स्रोत श्रीमद् देवी भागवतम् है, लेकिन मौलिक मार्गदर्शन और उनकी पुनर्रचना स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा की गयी है।

पद्धति

चरण एक– तैयारी

यह परामर्श दिया जाता है कि तत्त्व शुद्धि का अभ्यास प्रारम्भ करने से पहले त्राटक या प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा प्रत्याहार का विकास कर लिया जाये। इससे मन को स्थिर करने में और अन्तर की गहराई में जाने में मदद मिलती है।

दस-पन्द्रह मिनट के त्राटक या प्राणायाम के बाद आँखें बन्द कर लेनी चाहिए।

सिद्धासन, सिद्ध योनि आसन या पद्मासन में काया स्थैर्यम् का अभ्यास करें।

अपने गुरु का मानस दर्शन करें। मानसिक रूप से उन्हें प्रणाम करें, क्योंकि उनकी इच्छा से ही आप अभ्यास कर रहे हैं।

अब अपनी सजगता को मूलाधार चक्र पर ले जायें और कल्पना करें कि कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी से होती हुई सहस्रार चक्र तक जा रही है। उसके बाद *हंऽसो* मंत्र को रेचक और पूरक के साथ मिलाते हुए ध्यान करें। रेचक के साथ नीचे की ओर सुषुम्ना में सहस्रार से मूलाधार तक *हम्*; पूरक के साथ ऊपर की ओर सुषुम्ना में मूलाधार से सहस्रार तक *सो* । मंत्र *हंऽसो* के साथ नीचे और ऊपर की गति को अपनी आन्तरिक चेतना, अपनी अन्तरात्मा की गति के रूप में अनुभव करें। प्रत्येक श्वास के साथ स्वयं को ब्रह्म के साथ एकाकार होता हुआ अनुभव करें।

चरण दो– तत्त्व यंत्रों की रचना

अब अपनी सजगता को भौतिक शरीर के घुटनों और पैरों की अँगुलियों के बीच के भाग में ले जायें। वहाँ पीले चमकीले बड़े आकार के वर्ग का

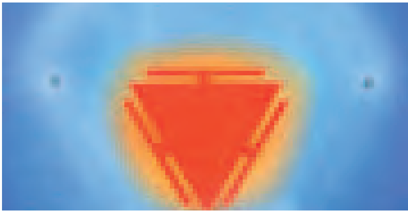


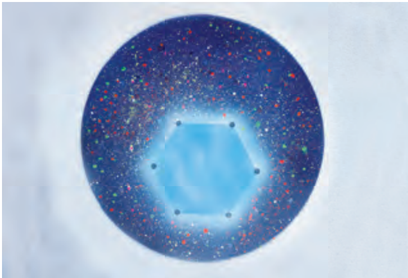
तत्त्व यन्त्र

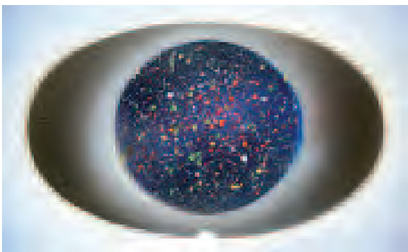
तत्त्वों का विलय


पृथ्वी का अपस् में

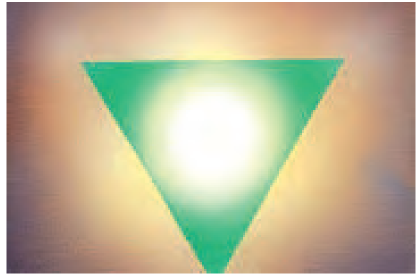

अपस् का अग्नि में


अग्नि का वायु में

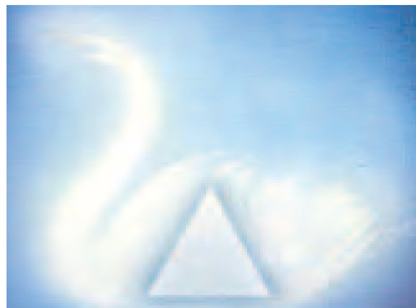

वायु का आकाश में


आकाश का अहंकार में


अहंकार का महत् में


महत् का प्रकृति में


प्रकृति का पुरुष में


पुरुष का ज्ञान में

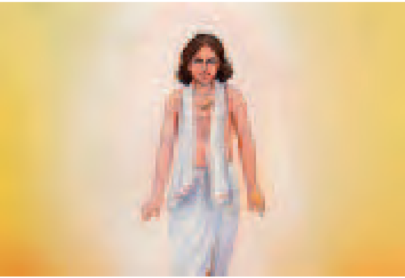
निम्नतर प्रकृति का रूपान्तरण



उदर की बायीं ओर पाप पुरुष की कल्पना



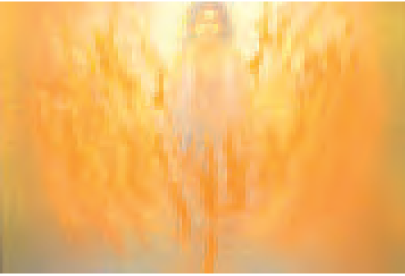
भस्म के गोले का अपस् यंत्र में अमृत के साथ मिलना



पाप पुरुष का रूपान्तरण



गोले का सुवर्ण अण्डे में रूपान्तरण

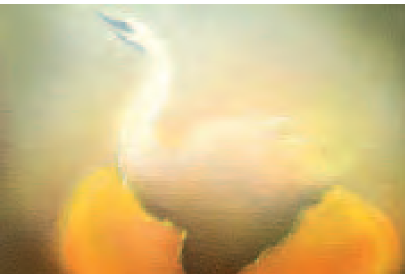


रूपान्तरित पाप पुरुष का जलकर भस्म होना

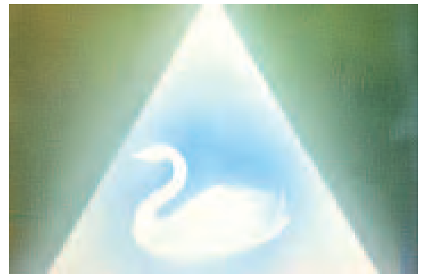


स्वयं का सुवर्ण अण्डे में रूपान्तरण

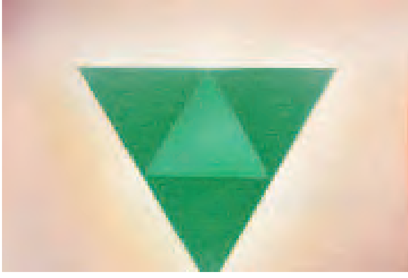
तत्त्वों का पुनर्निर्माण



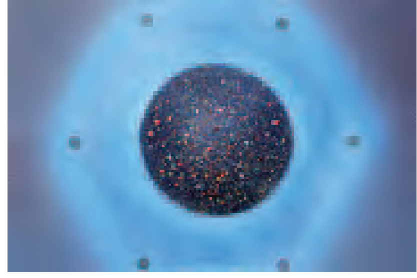
सुवर्ण अण्डे से शुद्ध ज्ञान तत्त्व का प्राकट्य



शुद्ध ज्ञान तत्त्व से पुरुष तत्त्व का प्राकट्य



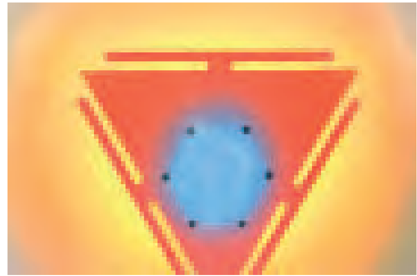
पुरुष तत्त्व से प्रकृति तत्त्व का प्राकट्य



आकाश तत्त्व से वायु तत्त्व का प्राकट्य



प्रकृति तत्त्व से महत् तत्त्व का प्राकट्य



वायु तत्त्व से अग्नि तत्त्व का प्राकट्य



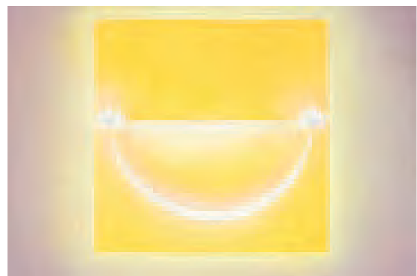
महत् तत्त्व से अहंकार तत्त्व का प्राकट्य



अग्नि तत्त्व से जल तत्त्व (अपस्) का प्राकट्य



अहंकार तत्त्व से आकाश तत्त्व का प्राकट्य



अपस् तत्त्व से पृथ्वी तत्त्व का प्राकट्य

मानस दर्शन करें जो पृथ्वी तत्त्व का यंत्र है। इसके सोने जैसे रंग को देखें। इसकी सघनता और भार का अनुभव करें। जब आप उस वर्ग का मानस दर्शन कर रहे हैं तब बीज मंत्र 'लं' का मानसिक उच्चारण करें।

उसके बाद अपनी सजगता को घुटनों और नाभि के बीच के क्षेत्र में ले जायें। वहाँ एक श्वेत अर्द्ध चन्द्र के दोनों सिरों पर दो श्वेत खिले हुए कमल के पुष्पों का मानस दर्शन करें। यह जल से भरे हुए एक वृत्त से घिरा हुआ है। यह अपस् तत्त्व का यंत्र है। श्वेत अर्द्ध चन्द्र को देखते हुए बीज मंत्र 'वं' का मानसिक उच्चारण करें।

अब सजगता को नाभि और हृदय के बीच के क्षेत्र में ले जायें। वहाँ एक उल्टे लाल त्रिभुज की कल्पना करें जो अग्नि का बना हुआ है और उसकी तीनों भुजाओं के बाहर भूपुर बना हुआ है। यह अग्नि तत्त्व का यंत्र है। उसका मानस दर्शन करते हुए बीज मंत्र 'रं' का मानसिक उच्चारण करें।

इसके बाद सजगता को हृदय और भ्रूमध्य के बीच के क्षेत्र में ले जायें। वहाँ छः भूरे-नीले गैसीय बिन्दुओं से बने षड्भुज आकार की कल्पना करें। यह वायु तत्त्व का यंत्र है। यहाँ धुआँ जैसा छाया हुआ है। जब आप भूरे-नीले षड्भुज का मानस दर्शन कर रहे होते हैं, तभी बीज मंत्र 'यं' का मानसिक उच्चारण करें।

अब अपनी सजगता को भ्रूमध्य और कपाल के बीच के क्षेत्र में ले जायें। वहाँ आकाश तत्त्व के वृत्ताकार यंत्र की कल्पना करें। उस वृत्त के अन्दर शून्य है। वह काला है और उसे रंग-बिरंगे बिन्दुओं से भरा जा सकता है। जब आप शून्य को देख रहे हों तब बीज मंत्र 'हं' का मानसिक उच्चारण करें।

चरण तीन– तत्त्वों का विलय

तत्त्वों को उत्पन्न करने के बाद अपनी सजगता को नीचे पृथ्वी तत्त्व पर वापस ले जायें। इसके स्वरूप को द्रव में रूपान्तरित होकर अपस् में विलीन होता हुआ, अपस् को अग्नि में, अग्नि को वायु में और वायु को आकाश में विलीन होता हुआ देखें।

अब आकाश को अहंकार में विलीन होता हुआ देखें जो इसका कारण है। उसके बाद अहंकार का महत् तत्त्व में विलय देखें, महत् तत्त्व का विलय प्रकृति में और प्रकृति का पुरुष में विलय देखें।

उसके बाद स्वयं की कल्पना उच्चतम, शुद्ध और परम ज्ञान के रूप में करें।

चरण चार– निम्नतर प्रकृति का रूपान्तरण

अब अपनी सजगता को उदर के बायीं ओर ले जायें और वहाँ अपने अँगूठे के आकार के छोटे से पुरुष का मानस दर्शन करें। उसे पाप पुरुष कहा जाता है। उसकी त्वचा कोयले के समान काली है; उसकी आँखें अग्नि के समान प्रज्वलित हैं और उसका उदर विशाल है। उसके एक हाथ में फरसा है और दूसरे में ढाल है। उसका सम्पूर्ण स्वरूप वीभत्स है।

अब अपने श्वास और मंत्र के माध्यम से उस अँगुष्ठ पुरुष को रूपान्तरित करें।

अपनी दायीं नासिका को दायें अँगूठे से बन्द करें और बायीं नासिका से श्वास लेते हुए बीज मंत्र 'यं' का चार बार उच्चारण करें। उस अँगुष्ठ पुरुष को स्वच्छ और श्वेत होता हुआ देखें। उसका चेहरा और उसकी आकृति में परिवर्तन आ रहा है।

दोनों नासिकाओं को बन्द करके कुम्भक करें और 'रं' मंत्र का चार बार उच्चारण करें। देखें कि यह अँगुष्ठ पुरुष अग्नि में जल कर भस्म हो गया है।

उसके बाद दायीं नासिका से भस्म को श्वास के साथ निकाल दें और साथ में 'वं' मंत्र का चार बार उच्चारण करें। भस्म को एक गोले के रूप में लुढ़क कर अपस् यंत्र में चन्द्रमा से गिरे हुए अमृत के साथ मिश्रित होते हुए देखें।

अब बीज मंत्र 'लं' को दोहराते हुए उस छोटे गोले को अपने उदर के बायीं ओर एक सुवर्ण अण्डे में रूपान्तरित होता हुआ देखें।

बीज मंत्र 'हं' को दोहराते हुए उस सुवर्ण अण्डे के वर्द्धमान एवं देदीप्यमान रूप का तब तक मानस दर्शन करें जब तक वह आपके सम्पूर्ण शरीर को भरता नहीं है, और आप स्वयं सुवर्ण अण्डे में रूपान्तरित नहीं हो जाते हैं। अनुभव करें कि आपका पुनर्जन्म हुआ है।

चरण पाँच– तत्त्वों का पुनर्निर्माण

अब विपरीत क्रम में तत्त्वों का पुनर्निर्माण आरम्भ करें। सुवर्ण अण्डे से पुरुष, उसके बाद प्रकृति, उससे महत् तत्त्व, उसके बाद अहंकार बन जायें।

अहंकार से आकाश यंत्र का प्रकट होना देखें; आकाश से वायु; वायु से अग्नि; अग्नि से अपस्; अपस् से पृथ्वी तत्त्व का प्रकट होना देखें।
तत्त्व यंत्रों को उनके निर्धारित स्थानों पर उनके बीज मंत्रों के साथ देखें, जैसा कि ऊपर वर्णित है।

चरण छः–कुण्डलिनी का मूलाधार में प्रवर्त्तन

जब सभी तत्त्वों का पुनर्निर्माण हो जाये तब श्वास के साथ सजगता को मूलाधार एवं सहस्रार के बीच घुमाते हुए एक बार पुनः सुषुम्ना में *सोऽहम्* मंत्र का उच्चारण करें। प्रत्येक श्वास के साथ अनुभव करें कि आप पुनः जीवात्मा को परमात्मा से पृथक् कर रहे हैं, और जीवात्मा को हृदय में स्थित कर दें, जहाँ यह निवास करता है।
अब कुण्डलिनी शक्ति को देखें जिसे आप सहस्रार में ले गये थे, उसे सुषुम्ना के द्वारा सभी चक्रों को वेधते हुए मूलाधार में जाते हुए देखें।

चरण सात–शक्ति का स्वरूप

उसके बाद अपनी सजगता को चिदाकाश में ले जायें।
अपने सामने एक विशाल गहरे लाल सागर पर बृहत् लाल कमल को तैरता हुआ देखें। उस लाल कमल पर प्राण शक्ति की प्रतिमा विराजमान है। उनके शरीर का रंग उदीयमान सूर्य के समान है और वे सुन्दर आभूषणों से अलंकृत हैं।
उनकी तीन आँखें और छः हाथ हैं। उन्होंने अपने पहले हाथ में त्रिशूल धारण कर रखा है, दूसरे हाथ में ईंख का बना हुआ धनुष, तीसरे में पाश, चौथे में एक भाला, पाँचवें में पाँच बाण और छठे में रक्त टपकता हुआ एक मुण्ड।
उनके गरिमामय स्वरूप को देखते हुए आप स्वयं से कहें, "वे हमें आनन्द दें।"

चरण आठ– भस्म लगाना

स्वयं अपने प्रति सजग हो जायें कि आप भूमि पर बैठे हुए हैं। अपने सम्पूर्ण शरीर की सजगता का विकास करें। धीरे-धीरे श्वास लें और अपनी आँखें खोल दें।



इस प्रकार ध्यान करने के बाद भस्म लगानी चाहिए।
अपनी मध्यमा और अनामिका अँगुलियों पर थोड़ा भस्म लें और धीरे से अपने कपाल पर बायीं से दायीं ओर हाथ को ले जाते हुए दो लकीर खींचें। इसके साथ ही *ॐ ह्रौं नम: शिवाय* मंत्र का उच्चारण करें। (संन्यासियों को *ॐ हंस:* का उच्चारण करना चाहिए।)
अब अँगूठे पर थोड़ा भस्म लेकर उन दो लकीरों के ऊपर दायीं से बायीं ओर एक और लकीर खींचें और इसके साथ भी उसी मंत्र का उच्चारण करें। (दोपहर के पहले भस्म लगाते समय इसे थोड़ा गीला और दोपहर के बाद लगाने पर सूखा होना चाहिए।)
इस प्रकार स्वयं को शुद्ध अनुभव करें।

16

तत्त्व शुद्धि साधना के प्रभाव

तंत्र का मानना है कि शक्ति सृष्टि के प्रत्येक जीव से बड़ी सरलता से प्रसन्न हो जाती हैं। चूँकि तत्त्व शुद्धि शक्ति की उपासना है, इसलिए ऐसा माना जाता है कि उसके परिणाम अन्य साधनाओं की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से प्राप्त होते हैं और उसका प्रबल प्रभाव होता है। ये परिणाम दोनों प्रकार से, भौतिक लाभ और आध्यात्मिक सिद्धियों के रूप में संचित होते हैं। यद्यपि परिणाम बिना अधिक कठिनाई के प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु यदि उनका उचित उपयोग नहीं किया गया तो वे साधक में गम्भीर असन्तुलन उत्पन्न कर सकते हैं और अन्तत: आध्यात्मिक उन्नति को समाप्त कर सकते हैं। इसीलिए शास्त्रों में इस बात पर बल दिया गया है कि गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के बाद ही इस अभ्यास को करना चाहिए।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि किसी भी अभ्यास का स्थाई प्रभाव पूरी तरह उसे नियमित रूप से किये जाने पर निर्भर करता है। पतंजलि के योग सूत्रों में कहा गया है कि अभ्यास एक ऐसा आधार है जिस पर आध्यात्मिक अनुभवों का प्रकट होना निर्भर करता है। इसलिए, आप कितना अभ्यास करते हैं इसका उतना महत्त्व नहीं, जितना नियमित रूप से अभ्यास करने का है।

हम तांत्रिक अभ्यासों के द्वारा जो करना चाह रहे हैं वह है मन, बुद्धि और चेतना को प्रशिक्षित करना, ताकि वे हमारी इच्छानुसार एक विशेष ढंग से कार्य करें। हालाँकि ऐसा करने के लिए नियमित रहकर अनुशासन कायम रखने की आवश्यकता है। चेतना जो प्रबुद्धता की ओर अपनी यात्रा में विभिन्न अवस्थाओं से होकर आगे बढ़ती है, इसे आगे बढ़ते रहने के

लिए एक संवेग की आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं होने पर अपनी साधना में आपने जो प्रयास किये हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगे, क्योंकि यदि अभ्यास बाधित हुआ तो चेतना किसी भी क्षण फिसल कर स्थूल सजगता की अवस्था में आ जायेगी।

तंत्र में हम संचित ज्ञान की प्राप्ति का नहीं, बल्कि अनुभव प्राप्त करने प्रयास करते हैं। एक बार जो ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह स्मृति की गहराइयों में संचित हो जाता है और कभी खोता नहीं है। यदि आपने अपनी शिक्षा को किसी बिन्दु पर बन्द कर दिया था तो उसे पुन: आरम्भ करने पर वह वहीं से आगे बढ़ेगी जहाँ उसे आपने छोड़ा था। हालाँकि आन्तरिक अनुभव के नियम बिल्कुल भिन्न हैं। आप अपनी साधना को वहाँ से प्रारम्भ नहीं कर सकते हैं जहाँ वह बाधित हुई थी, बल्कि आपको बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था से आरम्भ करना होगा।

इसलिए, किसी साधना के माध्यम से विकास करने के लिए, हमने जो पहले ही प्राप्त कर लिया है, उसे सुरक्षित रखने के लिए निरन्तर अविरत प्रयास करने होगें। तत्त्व शुद्धि के अभ्यास में ऐसी क्षमता है कि वह साधक को उसके अन्तस्तल की गहराइयों में ले जाये, लेकिन उसके लिए नियमितता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

शारीरिक प्रभाव

तत्त्व शुद्धि का अभ्यास चेतना में कुछ सूक्ष्म परिवर्तन लाता है जिसे साधक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आत्मिक और आध्यात्मिक स्तरों पर अनुभव करता है। शारीरिक स्तर पर उपवास और तत्त्व शुद्धि का गहन अभ्यास, एक साथ मिलकर सम्पूर्ण भौतिक शरीर को पुनर्व्यवस्थित और रूपान्तरित करते हैं। हमने देखा है कि किस प्रकार पंच तत्त्व कम्पायमान होकर मांस, रक्त और अस्थियों से बने हमारे वर्तमान शरीर की रचना करते हैं। इसलिए, जब हम तत्त्वों को पुन: ऊर्जित और परिष्कृत करते हैं तब उनका प्रभाव स्वत: हृदय, यकृत, वृक्क, आमाशय जैसे स्थूल अंगों में पहुँच जाता है तथा उन सभी अंगों में भी जो तत्त्वों से उत्पन्न हुए हैं।

शरीर पर होने वाले प्रभावों का अनुभव चयापचय, चय और अपचय क्रियाओं की दर में होने वाले परिवर्तन के द्वारा किया जा सकता है जो शरीर की उपयुक्त क्रियाशीलता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके द्वारा कोशिकाओं

एवं ऊत्तकों का जीर्णोद्धार होता है और उन्हें ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे शरीर तथा मन स्वस्थ रहता है। इसके फलस्वरूप शरीर में हल्केपन और लचीलेपन का अनुभव होता है, तथा त्वचा में चमक आ जाती है।

भस्म लगाने का सम्पूर्ण शरीर और स्नायु तंत्र पर शीतल प्रभाव होता है। यह ध्यान के गहन अभ्यास से या दोषपूर्ण भोजन से और आन्तरिक अंगों की त्रुटिपूर्ण क्रिया से उत्पन्न ताप की अधिकता को दूर करता है। भस्म शरीर पर लगे घावों को भी मिटा देता है जिससे त्वचा में चमक आ जाती है। यही कारण है कि श्रीमद् देवी भागवतम् में कहा गया है, "इस संकल्प के द्वारा कोढ़ तथा अन्य कफजन्य रोगों से बचा जा सकता है।" जिस प्रकार हम हठ योग में शंखप्रक्षालन के द्वारा आन्तरिक अंगों की सफाई करते हैं, ठीक उसी प्रकार हम शरीर और मन की सम्पूर्ण ऊर्जा प्रणाली में तत्त्व शुद्धि के द्वारा शंखप्रक्षालन जैसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। चक्रों और असंख्य नाड़ियों के अवरोध जो ऊर्जा के मुक्त प्रवाह को रोकते हैं, वे दूर हो जाते हैं और ऊर्जा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप सभी शारीरिक प्रक्रियायें स्वत: फिर से ऊर्जित हो जाती हैं।

मन पर प्रभाव

शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में मन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह पाया गया है कि विचारों में इतनी शक्ति होती है कि वे शारीरिक रोग उत्पन्न कर देते हैं। हमने चिंता और तनाव के कारण हृदय गति के रुकने के अनेक उदाहरण देखे हैं। तत्त्व शुद्धि में हम मन की शक्ति और कल्पना का उपयोग भौतिक शरीर पर तत्त्वों को उनके विशुद्ध रूप में आरोपित करने के लिए करते हैं। मन की शक्ति के द्वारा हम शरीर में सूक्ष्म ऊर्जा क्षेत्रों के विकास और विलय की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अनुपालन करते हैं। वस्तुत: मन भी उन्हीं तत्त्वों से बना है जो भौतिक शरीर में प्रकट होने वाले तत्त्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और शक्तिशाली हैं। इसलिए, हम क्षीण शक्ति वाले शरीर पर मूर्त और सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए मन की प्रबल शक्ति का उपयोग करते हैं।

प्राण के उत्कृष्ट स्तर एवं ऊर्जा-प्रणाली में संगति के कारण मानसिक एवं भावनात्मक स्तरों पर तनाव और पूर्वनिर्मित धारणाएँ समाप्त हो जाती हैं। ध्यान के अभ्यास के दौरान अवचेतन में मची हुई उथल-पुथल जो सतह पर

आ जाती है, उससे साधक प्राय: परेशान हो जाता है। श्रीमद् देवी भागवतम् में कहा गया है, "यह अभ्यास राक्षसों एवं प्रेतों से साधक की रक्षा करता है।" ये सब अतीत में हुए दमन और अत्याचार के परिणाम हैं जिन्हें बाहर निकालना है, लेकिन हम बिना ध्यान को बाधित किये हुए यह कैसे कर सकते हैं? तत्त्व शुद्धि में यह देखा गया है कि परेशान करने वाले दृश्यों के बावजूद मन शान्त रहता है। इस आन्तरिक सन्तुलन की अनुभूति अभ्यास के बाद भी की जा सकती है। यह सन्तुलन और समरूपता का भाव है जो बाहर के नकारात्मक प्रभावों से विचलित नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, वे संस्कार जो आपको किसी भी परिस्थिति में प्रतिक्रिया करने के लिए बाध्य करते हैं, तत्त्व शुद्धि साधना के द्वारा तीव्र गति से बाहर निकल जाते हैं। जब संस्कार ही नहीं रहेगा तो यह बाधा कैसे उत्पन्न करेगा?

तत्त्व यंत्रों पर मानस दर्शन एवं ध्यान, मंत्रोच्चारण और मण्डल के निर्माण के माध्यम से संस्कार स्वप्न, दृश्य और विचारों के रूप में भ्रमण करते हुए चेतन मन में चले आते हैं और वहाँ से बाहर निकल जाते हैं। अधिकांश यौगिक अभ्यासों के परिणामस्वरूप आत्मिक दृश्य प्रकट होते हैं, किन्तु तत्त्व शुद्धि में वे अधिक प्रबल हो जाते हैं। इन आत्मिक दृश्यों का अनुभव सूक्ष्म ध्वनि, गन्ध, स्पर्श, स्वाद या आकार के रूप में हो सकता है तथा उत्थित आन्तरिक सजगता के कारण साधक इन अस्तित्वों के प्रति संवेदनशील हो जाता है।

मनुष्य के अनुभवों का आत्मिक आयाम उतना ही वास्तविक होता है जितना भौतिक आयाम। उनमें अन्तर केवल इतना ही होता है कि सजगता के स्थूल स्तर के कारण उन पर ध्यान नहीं जाता है। आत्मिक स्तर पर उत्सर्जन की प्रक्रिया साधक को मानसिक और भावनात्मक उथल-पुथल से मुक्त कर देती है। तभी वह शारीरिक तथा मानसिक तनाव से मुक्त हो जाता है और सूक्ष्मतर आध्यात्मिक अनुभव प्रकट होने लगते हैं।

सिद्धियाँ एवं आध्यात्मिक लाभ

योग शास्त्रों में स्पष्टत: कहा गया है कि तत्त्वों पर ध्यान करके सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि मन और प्राण को पृथ्वी तत्त्व के साथ एकात्मक कर देने से शरीर और मन में स्थिरता आती है; अपस् तत्त्व में ये पीड़ा और दु:ख को मिटा देते हैं; अग्नि तत्त्व में ये मृत्यु के भय को

दूर कर देते हैं; वायु तत्त्व में ये उड़ने योग्य बना देते हैं; और आकाश तत्त्व में ये मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसके अतिरिक्त तत्त्वों के सक्रिय होने से अतीन्द्रिय दृष्टि, अतीन्द्रिय श्रवण, दूरसंवेदन या दूरानुभूति तथा अन्तर्बोध जैसी उच्चतर क्षमताओं का विकास होता है।

पृथ्वी तत्त्व रोगों का निदान करने में मदद करता है तथा शरीर को हल्का और सूक्ष्म बना देता है। इस तत्त्व को नियन्त्रित कर लेने पर शरीर भूमि से ऊपर भी उठ सकता है। अपस् तत्त्व प्राण वायु को सन्तुलित कर देता है और जब यह सक्रिय हो जाता है तो अन्तरिक्ष भ्रमण की योग्यता भी आ जाती है। अग्नि तत्त्व अन्य धातुओं को स्वर्ण में रूपान्तरित करने की और किसी अन्य के शरीर में प्रवेश करने की क्षमता प्रदान करता है। वायु तत्त्व के सक्रिय होने पर अतीत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान प्राप्त होता है, अन्तरिक्ष में विद्यमान मानवेतर अस्तित्वों के सम्पर्क में ले आता है और आत्मिक उपचार की क्षमता प्रदान करता है। आकाश तत्त्व आत्मिक कल्पना करने के योग्य बना देता है और गूढ़ सत्यों को प्रकट करता है। हालाँकि, हम जिस उद्देश्य के लिए तत्त्वों को सक्रिय करने का प्रयास कर रहे हैं, वह उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव हैं, इन शक्तियों को प्राप्त करना नहीं है।

आध्यात्मिक अनुभव के सन्दर्भ में, यह अभ्यास सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त सूक्ष्म शक्तियों की उत्थित सजगता की ओर ले जाता है। जिन मानसिक आवृत्तियों का सम्बन्ध स्थूल, वस्तुनिष्ठ अनुभवों से होता है वे ही उन्नत होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म स्पन्दनों के साथ अनुकूलित हो जाती हैं जिससे साधक को अन्दर और बाहर से एकात्मता का अनुभव होने लगता है। इसका कारण यह है कि साधक उन शक्तियों के प्रति अधिक स्पष्टता और अन्तर्बोध के साथ मुखर हो उठता है, और उनसे जिस ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है वे सहज ही चेतन मन में चले जाते हैं। ये प्रभाव अभ्यास के स्वाभाविक परिणाम के रूप में होते हैं और साधक को यह समझने के लिए कठिन प्रयास नहीं करना पड़ता है कि उसकी आन्तरिक क्षमताएँ उससे क्या कहना चाहती हैं। साधक स्वाभाविक रूप से अन्तर्बोध से परिपूर्ण हो जाता है और हर स्तर पर उसे आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

तांत्रिक शास्त्र यह भी कहते हैं कि तत्त्वों का ज्ञान वैराग्य की उच्चतम स्थिति उत्पन्न करता है। वैराग्य का गुण इस बात की समझ के परिणामस्वरूप विकसित होता है कि सभी पदार्थ क्षणभंगुर हैं और मानव केवल अणुओं,

परमाणुओं और ऊर्जा कणों की समष्टि से उत्पन्न हुआ है। यह ज्ञान अनासक्ति का भाव भर देता है, क्योंकि उन वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति आसक्ति का अनुभव होना असम्भव है जिन्हें हम संग्रहित ऊर्जा के रूप में देखते हैं। यह अनासक्ति वैराग्य के बीज के लिए मिट्‌टी का काम करती है।

ऊपर दिये गये सारे विवरण उन निष्ठावान साधकों के व्यक्तिगत अनुभवों और प्रयोगों पर आधारित हैं जिन्होंने लम्बी अवधि तक साधना की थी। चूँकि तत्त्व शुद्धि का अभ्यास कमोबेश योगाभ्यासियों और साधकों के लिए दुरूह था, विशेष रूप से पश्चिमी देशों के लोगों के लिए, हम उपरोक्त परिणामों को वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा प्रमाणित नहीं कर पाये हैं। फिर भी ध्यान, मंत्र, यंत्र,मण्डल और उपवास पर किये गये अनुसन्धान इस अभ्यास की प्रभावोत्पादकता को पर्याप्तत: प्रमाणित कर सकते हैं।

17

गुरु

शिव संहिता (3:11) में कहा गया है, "केवल गुरु के मुख से प्रदत्त ज्ञान ही प्रभावशाली और उपयोगी होता है, अन्यथा यह व्यर्थ, प्रभावहीन और अत्यन्त कष्टदायक होता है।" वास्तव में, सभी प्राचीन शास्त्र कहते हैं कि आध्यात्मिक साधना, विशेषकर उच्च गुह्य अभ्यासों के लिए गुरु अपरिहार्य हैं। सभी दृष्टिकोणों से यह तर्कसंगत तथ्य है। किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें एक शिक्षक के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। तब, आध्यात्मिक विज्ञान के लिए मार्गदर्शक की आवश्यकता पर संदेह क्यों?

गुरु का अर्थ होता है, जो अन्धकार, अर्थात् अज्ञान दूर करे और प्रकाश लाये। इसलिए, गुरु शिक्षक से श्रेष्ठ होते हैं। एक शिक्षक आपकी बुद्धि को उत्प्रेरित और संतुष्ट करने के लिए आपको केवल विषय का ज्ञान दे सकते हैं किन्तु गुरु आपको अपने व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से अन्तर्जात ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु वे हैं जिन्होंने अपनी साधना और कठोर अनुशासन के द्वारा परम सत्य को प्राप्त किया है। उन्होंने उसी मार्ग पर यात्रा की है जिस पर हम ठोकरें खा रहे हैं, इसलिए वे उन बाधाओं और खतरों को जानते हैं जिनसे शिष्य का पतन हो सकता है।

मार्ग दुर्गम है, छुरे की धार के समान पतला है और ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्होंने इसको पार किया है और इस मार्ग को समझा है। हम तो अपने गन्तव्य को ही नहीं जानते हैं, तो यह कैसे कह सकते हैं कि हमें मार्ग ज्ञात है। यद्यपि गुरु वहाँ थे, लेकिन हमें मार्ग दिखाने के लिए उनका वापस आना हमारे लिए उनके अनुग्रह का प्रतीक है। एक साधक के रूप में विनम्रतापूर्वक हमें उनका आभार व्यक्त करना चाहिए। दिव्य शक्तियाँ उनके अन्दर प्रस्फुटित हुई हैं

और उन शक्तियों ने आत्मा के रहस्यों को उद्घाटित किया है। उन्होंने छुपे हुए सत्य को अपने लिए ढूँढ निकाला है, लेकिन वे दूसरों को इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए अपने अनुभवों को उन तक भी संप्रेषित करते हैं। वास्तव में सच्चे गुरु के जीवन का केवल यही उद्देश्य होता है– दूसरों में आध्यात्मिक ज्ञान की चाह उत्पन्न करना।

भारत में, जहाँ गुरुओं की परम्परा को आदिकाल से कायम रखा गया है, गुरु को दिव्यता का मूर्तिमान स्वरूप माना जाता है। भारतीयों का विश्वास है कि हम लोगों के बीच रहते हुए भी गुरु अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के माध्यम से ईश्वर के निकट होते हैं। यदि ईश्वर का अस्तित्व है, तो ऐसा हो सकता है, किन्तु क्या किसी ने उन्हें देखा है? गुरु के रूप में ही दिव्यता प्रकट हुई है, जिसके हम साक्षी हैं। इसीलिए, एक मार्गदर्शक के स्वरूप को विनम्रतापूर्वक आभार व्यक्त किया जाता है। महान बुद्धिजीवी, विचारक और दार्शनिक उन गुरु के सम्मुख नतमस्तक हुए हैं जिन्होंने सत्य का अनुभव पाया है, क्योंकि शैक्षिक ज्ञान उस अनुभव के समक्ष कुछ भी नहीं।

तथाकथित सभ्य समाज के नागरिकों के रूप में हम बुद्धि के वर्चस्व को मानते हैं और ज्ञान के किसी अन्य स्रोत की उपेक्षा करते हैं, भले ही वह अधिक उपयुक्त हो। हम उसके लिए दोषी नहीं हैं, क्योंकि बचपन से हमें इसी प्रकार प्रशिक्षित किया गया है, लेकिन आध्यात्मिक जीवन में हमें श्रद्धा-विश्वास, प्रेम और भक्ति की उदात्त भावनाओं के माध्यम से बुद्धि से ऊपर जाना होगा। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने के लिए व्यक्ति को सब कुछ भूलना होगा क्योंकि आध्यात्मिक अनुभव बुद्धि से परे होता है और आचरण के तर्कपूर्ण नियमों का पालन नहीं करता है। इसीलिए प्राय: एक बच्चे के समान अबोध, निष्कलुष रहने के लिए कहा जाता है जो तार्किक बुद्धि से बँधा हुआ नहीं होता है।

सभी आध्यात्मिक साधना का आधार साधक का व्यक्तिगत विकास होता है। सांस्कृतिक, सामाजिक, जातिगत और राजनैतिक आधार पर हम समान हो सकते हैं; हम धार्मिक दृष्टि से भी एक हो सकते हैं, किन्तु आध्यात्मिक विकास के आधार पर कोई दो व्यक्ति समान स्तर पर नहीं होते हैं। यह कौन बतला सकता है कि आप सोपान के किस चरण पर हैं? आपकी आध्यात्मिक साधना वहाँ से आरम्भ होगी, जहाँ आप हैं। केवल गुरु ही साधक के कर्म और व्यक्तिगत विकास को देखकर मूल्यांकन कर सकते हैं

और उस आधार पर साधना दे सकते हैं। यह अन्तर्दृष्टि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आपकी प्रगति साधना की उपयुक्ता और उसकी प्रभावोत्पादकता पर ही निर्भर करेगी।

लोग प्राय: शिकायत करते हैं कि वे ध्यान नहीं कर पाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते हैं कि शरीर और मन के प्रारम्भिक अनुशासनों का पालन किये बिना ध्यान सम्भव नहीं है। शरीर दस मिनट से अधिक स्थिर नहीं रह सकता है और मन एक विचार से दूसरे विचार की ओर भागता रहता है। ऐसे में ध्यान कैसे सम्भव हो सकता है? इसमें ध्यान के अभ्यास का दोष नहीं है। बल्कि आपके प्रयास में त्रुटि है।

कभी-कभी साधक पूर्व जन्म की साधना के द्वारा प्रगति कर चुका होता है, लेकिन उस प्रगति के स्तर को समझ पाने के लिए कुशल गुरु की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक जीवन में आप जिस शक्ति के द्वारा क्रियाशील हैं, यह वही शक्ति है जिसने आपकी रचना की है, अर्थात् चेतना। यह सूक्ष्म विषय है, निस्संदेह इसके लिए निपुणता की आवश्यकता है। गुरु में यह निपुणता होती है। आध्यात्मिक साधना का चयन साधक की व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर नहीं किया जा सकता है। केवल गुरु को यह निर्णय लेने का अधिकार, अन्तर्दृष्टि और अनुभव है कि साधक के लिए कौन सी साधना सर्वोत्तम होगी।

हम जीवन के खेल में अपरिपक्व हैं, इसके बावजूद हम सोचते हैं कि हम निपुण हैं। इसके अतिरिक्त, आध्यात्मिक साधना मन के गहनतम स्तरों पर होती है जहाँ पूर्व अनुभवों के अवशेष संचित रह जाते हैं। यदि साधना गुरु के सतर्क निर्देशन में नहीं की गयी, तो उनसे आमना-सामना होने पर आप अपना सन्तुलन खो सकते हैं।

गुरु आपको साधना की दीक्षा देते हैं और मार्ग में आने वाली कठिनाइयों के बावजूद आपको उस पर चलते रहने की प्रेरणा देते हैं। किसी भी साधना को प्रारम्भ करने के पूर्व दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। गुरु की दीक्षा शक्तिपूरित होती है और आध्यात्मिक अभ्यास के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करती है तथा मानसिक सन्तुलन प्रदान करती है ताकि आप साधना के लाभ प्राप्त कर सकें। तंत्र शास्त्रों में कहा गया है कि गुरु की दीक्षा के बिना की गई साधना से वांछित फल नहीं प्राप्त हो सकते हैं।

गुरु के द्वारा दी गयी साधना शिष्य के अहंकार को बाहर निकालने में और कर्मों का क्षय करने में मदद करती है, यदि उसे बिना किसी अपेक्षा के किया गया हो। यदि गुरु के निर्देशों को बिना किसी लाभ की आशा के स्वीकार कर लिया जाता है तो यह अहंकार पर आपकी विजय है। आप स्वयं जो भी करने का निर्णय लेते हैं, उसमें अहं का भाव होता है। जब गुरु आपको निर्देश देते हैं तब वह आपकी इच्छा नहीं, बल्कि उनका आदेश होता है, और वही आपको प्रेरित करता है। जब कोई इच्छा नहीं होती है, तो कोई अपेक्षा, कोई भ्रम नहीं होता है, और इस सूक्ष्म प्रक्रिया के द्वारा शिष्य प्रगति करता है।

25 वर्गाकार चित्रों में आरेखन



चित्रों का क्रम

1	6	11	16	21
2	7	12	17	22
3	8	13	18	23
4	9	14	19	24
5	10	15	20	25

तत्त्व शुद्धि प्रक्रिया का 25 वर्गाकार चित्रों में आरेखन व उनका संक्षिप्त वर्णन

इस एक चित्र में 25 छोटे वर्गाकार चित्र बने हैं जो तत्त्व शुद्धि पुस्तक में वर्णित प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण चरणों को आरेखित करते हैं और जिनका क्रम एवं नियोजन निम्नानुसार है–

पुस्तक में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार ध्यानस्थ बैठा साधक अपने शरीर पर विभिन्न तत्त्व यंत्रों को स्थापित करने के पश्चात् ध्यान में कल्पनाएँ करता है, जिनका आरेखन एवं वर्णन पाठकों की सुविधा हेतु निम्नानुसार दिया गया है–

1. इस पहले वर्गचित्र में पृथ्वी तत्त्व यंत्र (जिसे पीतवर्णी वर्गाकार यंत्र के रूप में दर्शाया गया है), अपस् तत्त्व यंत्र (जिसे अर्धचन्द्र के रूप में दर्शाया गया है और जिसके दोनों छोरों पर श्वेतकमल हैं तथा जो अमृतजल से भरा हुआ है) में घुलकर अपना अस्तित्त्व खोते हुए वर्णित है।
2. इस वर्गचित्र में अपस् तत्त्व यंत्र (अर्धचन्द्र) वाष्पीकृत होकर अग्नि तत्त्व यंत्र (जो अधोमुखी लाल त्रिकोण के रूप में चित्रित है) में लुप्त हो जाता है।
3. इस वर्गचित्र में अग्नि तत्त्व यंत्र (अधोमुखी लाल त्रिकोण) विसर्जित होकर वायु तत्त्व यंत्र (जिसे एक षट्कोणीय आकार में अवस्थित छः धूसर-नीले बिन्दुओं के रूप में बताया गया है) में अदृश्य हो जाता है।
4. इस वर्गचित्र में वायु तत्त्व यंत्र (षट्कोण) एक विशाल आकाश तत्त्व यंत्र (जो एक गहरे श्याम-नील वर्ण के वृत्त रूप में चित्रित है तथा जिसमें विविध रंगी अनेक बिन्दु जगमगा रहे हैं) में समाकर विलीन हो जाता है।
5. इस वर्गचित्र में आकाश तत्त्व यंत्र (गहरा नील-श्यामवर्णी वृत्त) अहंकार में समा जाता है (अहंकार की कल्पना एक भूरे रंग के बीज के रूप में की गई है, जो समय के साथ बढ़ता ही जाता है)।
6. इस वर्गचित्र में अहंकार (भूरे रंग का बीज) लुप्त हो जाता है महत् तत्त्व (अर्थात बुद्धि, यहाँ महत् तत्त्व की कल्पना एक ऐसे प्रकाश पुंज के रूप में की गयी है, जिसका कोई निश्चित आकार नहीं है) में।
7. इस वर्गचित्र में महत् तत्त्व (प्रकाश पुंज) प्रकृति (जिसे एक हरे रंग के अधोमुखी त्रिकोण के रूप में दर्शाया गया है) से एकाकार हो जाता है।

8. इस वर्गचित्र में प्रकृति (अधोमुखी हरा त्रिकोण) पुरुष (जिसे एक रुपहले ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण के रूप में दर्शाया गया है) में विलीन हो जाती है।
9. इस वर्गचित्र में पुरुष (रुपहला ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण) का अस्तित्व समाहित हो जाता है सम्पूर्ण ज्ञान (वैदिक भाषा में ब्राह्मण– जिसे एक श्वेत राजहंस के रूप में दर्शाया गया है) में।

अब इस बिन्दु से पुस्तक में वर्णित प्रक्रियानुसार साधक अपना ध्यान अपने उदर के वाम भाग में ले जाता है और इसके आगे का चित्रिकरण निम्नानुसार है–

10. इस वर्गचित्र में तत्त्व शुद्धि साधक को ध्यान के एक आसन में बैठा हुआ दिखाया गया है, जिसके उदर के वामभाग में एक अंगुष्ठाकार पाप पुरुष उकेरा गया है, जोकि कोयले के समान काला है, उसकी आँखें अग्नि के समान लाल हैं और उदर लम्बा है। इस पाप पुरुष के एक हाथ में फरसा है और दूसरे हाथ में ढाल है। यह साधक की विकृतियों का प्रतीक है, जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं। इस पाप पुरुष का सम्पूर्ण आकार भाद्दा और विकृत है।
11. इस वर्गचित्र में उपर्युक्त वर्णित कृष्णवर्णी पाप पुरुष का रूपान्तरण होकर वह एक धवल वस्त्रधारी पुरुष (जोकि एक भद्र पुरुष है और सुन्दर व्यक्तित्त्व का स्वामी है) बन जाता है।
12. इस वर्गचित्र में अब यह रूपान्तरित धवल वस्त्रधारी भद्र पुरुष अग्नि की लपटों में जलने लगता है और धीरे-धीरे साधक की हर श्वास के साथ राख के ढेर में बदल जाता है। इस प्रकार तत्त्व शुद्धि साधक की समस्त विकृतियाँ जलकर नष्ट हो जाती हैं।
13. इस वर्गचित्र में ऊपर वर्णित राख का गोला अपस् तत्त्व यंत्र के अर्धचन्द्र में उपस्थित अमृतजल में घुलकर एक सुवर्णमय गोले में बदल जाता है। यह साधक के पुनर्जन्म की पूर्वावस्था है।
14. इस वर्गचित्र में अब यह सुवर्णमय गोला साधक के उदर के वाम भाग में एक सुवर्णमय अंडे के रूप में अंगुष्ठाकार प्रकट होता है, जो प्रारंभ में आकार में छोटा है, परन्तु दीप्तिमान है।
15. इस वर्गचित्र में शनैः-शनैः उपर्युक्त सुवर्णमय अंडे की चमक के साथ उसका आकार बढ़ने लगता है, और अन्ततः इस सुवर्णमय अंडे का आकार साधक से बड़ा होकर साधक के अस्तित्व को ढक लेता है। अंततः साधक और सुवर्णमय अंडा एकरूप हो जाते हैं। यह साधक

की तत्त्व शुद्धि की प्रक्रिया पूर्ण होने का द्योतक है। यहाँ से साधक के शुद्धिकृत रूप का पुन: आविर्भाव प्रारंभ होता है।

16. इस वर्गचित्र में अब साधक अपना पुनर्जन्म हुआ है, ऐसा अनुभूत करता है, जिसे अभिव्यक्त करने के लिए एक सुवर्णमय अंडे को तोड़कर राजहंस (अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान या ब्राह्मण) को बाहर आते दर्शाया गया है।
17. इस वर्गचित्र में सम्पूर्ण ज्ञान अथवा ब्राह्मण (राजहंस) से पुरुष (ऊर्ध्वमुखी रुपहला त्रिकोण) जन्म लेता है।
18. इस वर्गचित्र में पुरुष (ऊर्ध्वमुखी रुपहला त्रिकोण) से प्रकृति (हरे रंग का अधोमुखी त्रिकोण) अवतरित होती है।
19. इस वर्गचित्र में प्रकृति (अधोमुखी हरित त्रिकोण) में से महत् तत्त्व (एक प्रकाशपुंज जिसका निश्चित आकार नहीं है) प्रकट होता है।
20. इस वर्गचित्र में महत् तत्त्व (प्रकाशपुंज) से अहंकार (भूरे बीज के रूप में चित्रित) जन्म लेता है।
21. इस वर्गचित्र में अहंकार (भूरे रंग का बीज) से आकाश तत्त्व यंत्र (गहरा नील-श्याम वर्णी वृत्त) उभर कर आता है।
22. इस वर्गचित्र में आकाश तत्त्व यंत्र (गहन नील-श्यामवर्णी वृत्त) से वायु तत्त्व यंत्र (षट्कोणीय आकार में अवस्थित छ: धूसर-नीले बिन्दुओं) का आविर्भाव होता है।
23. इस वर्गचित्र में वायु तत्त्व यंत्र (षट्कोणीय आकार में अवस्थित छ: धूसर-नीले बिन्दुओं) से अग्नि तत्त्व यंत्र (लाल रंग का अधोमुखी त्रिकोण) प्रकट होता है।
24. इस वर्गचित्र में अग्नि तत्त्व यंत्र (लाल रंग का अधोमुखी त्रिकोण) से अपस् तत्त्व यंत्र (जिसे अर्धचन्द्र के रूप में दर्शाया गया है, जिसके दोनों छोरों पर श्वेतकमल हैं) जन्म लेता है।
25. इस वर्गचित्र में अपस् तत्त्व यंत्र (अर्धचन्द्र) से पृथ्वी तत्त्व यंत्र (पीतवर्णी वर्गाकार) उत्पन्न होता है।

अब इन तत्त्व यंत्रों को साधक तत्त्व शुद्धि पुस्तक के वर्णनानुसार अपने शरीर के विभिन्न अंगों में स्थापित करता है। इस प्रकार इन 25 वर्गचित्रों में तत्त्व शुद्धि की महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं का चित्रों के माध्यम से आरेखन किया गया है।

नोट



स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1953 में चन्द्रनगर (प. बंगाल) में एक संभ्रान्त परिवार में हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद आपने एयर इंडिया में उच्च पद पर अपनी सेवाएँ दीं तथा सारे विश्व में दूर-दूर तक यात्रायें कर अनेक राष्ट्रों व संस्कृतियों को निकट से समझा। आपको युवावस्था में ही अनेक अद्भुत आध्यात्मिक अनुभव हुए जो अंतत: आपको संन्यास के पथ पर ले आए तथा आपने सन् 1982 में पूर्ण संन्यास ग्रहण किया। नाम के अनुरूप आप अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सतत् सान्निध्य में रहकर सेवा करती रहीं तथा उनसे योग व तंत्र की अनेक शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप से ग्रहण किया। आपको आधुनिक विज्ञान व दर्शन शास्त्रों में गहरी रुचि है, इसी कारण आप सरल सामयिक उदाहरणों के माध्यम से अनेक गूढ़ आध्यात्मिक विषयों को सुबोध बना देती हैं। आपको परमहंस संन्यास की दीक्षा सन् 2007 में प्राप्त हुई।

आपने तंत्र व योग के कुछ गहन विषयों पर गूढ़ जानकारियों से भरपूर तथा अपने अनुभवों से परिपूर्ण लेखन किया है। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान भैरव तंत्र, श्री सौन्दर्य लहरी जैसी टीकाएँ तथा कर्म संन्यास, तत्त्व शुद्धि जैसी आध्यात्मिक व्यवहार का ज्ञान देने वाली पुस्तकें हैं, जिन्होंने अनेक साधकों का मागदर्शन किया है।

आपकी आध्यात्मिक यात्रा अनवरत चल रही है तथा आपने हाल ही में पंचाग्नि साधना पूर्ण की है। आप रिखियापीठ की पीठाधीश्वरी हैं तथा अपने सद्गुरु के आज्ञानुसार (अपने पड़ोसी की वैसे ही देखभाल करो, जैसी मैंने आपकी की है), इस दूरस्थ आदिवासी बहुल व आधुनिक सुविधाओंरहित क्षेत्र में रहकर, अनेक पंचायतों व छोटे-छोटे ग्रामों में बच्चों को शिक्षा, खेलकूद व रोजगारमूलक प्रशिक्षण, ग्रामीणों को स्वास्थ्य सुविधाओं व रोजगार हेतु सहायता, वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्य कर रही हैं। निष्काम कर्मयोग कैसे किया जाता है, आप इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। साथ ही आप रिखियापीठ में, जिसका उद्देश्य 'सेवा, प्रेम व दान' है, कई ऐसे आध्यात्मिक प्रशिक्षण, अनुष्ठान, यज्ञ व कार्यक्रम भी वर्ष भर आयोजित करती हैं, जो सनातन गुरु परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने व उसे आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाते हैं।



तत्त्व शुद्धि अन्त:करण के शुद्धिकरण की एक तांत्रिक पद्धति है। प्रत्येक व्यक्ति पाँच आधारभूत तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच आधारभूत तत्त्वों का शुद्धिकरण एवं रूपान्तरण तत्त्व शुद्धि की प्रक्रिया के द्वारा किया जा सकता है। इस सारगर्भित पुस्तक में पंच तत्त्वों के सैद्धान्तिक पक्ष, अभ्यास के विस्तृत विवरण के साथ-साथ तंत्र के तीन आधारभूत अंग–यंत्र, मंत्र और मण्डल का भी समावेश किया गया है।

तत्त्व शुद्धि एक उच्च अभ्यास पद्धति है, जिसे स्वयं एक साधना के रूप में या कुण्डलिनी क्रिया तथा अन्य उच्चतर योगों के सहायक अभ्यासों के रूप में किया जा सकता है।



ISBN

978-93-81620-72-4